सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक
योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

वर्ष
३

वार्षिक मूल्य
१० रुपया

अंक
५

अगस्त
१९८०

इस अंक
का मूल्य
१ रु०

गुरु महिमा

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को गहै,
गुरु के प्रसाद भवदुःख बिसराइये।
गुरु के प्रसाद प्रेम, प्रीतिहु अधिक बाढ़ै,
गुरु के प्रसाद, राम नाम गुण गाइये॥
गुरु के प्रसाद, सब जोग की जुगति जानै,
गुरु के प्रसाद, सून्य में समाधि लाइये।
सुन्दर कहत, गुरुदेव जो कृपालु होइ,
तिन के प्रसाद, तत्त्वग्यान पुनि पाइये॥

—सन्त सुन्दरदास

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाई ऐत्मादपुर आगरा

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई एत्मादपुर
आगरा

इस अङ्क में—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. शाश्वत-सनातन	………	१
२. श्रीकृष्ण का शक्तिपात (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमं हंसजी महाराज	२
३ गीता-ज्ञान-सार	श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर', शङ्कर-निवास, झाँसी (उ.प्र.)	६
४. गुरु की सेवा से ब्रह्मज्ञान	श्री सुरेन्द्रबहादुर एम. ए.	१०
५. योगि-समाज का आविर्भाव	श्री विजयसिंह एम. ए. रिसर्च स्कालर	१४
६. अनुरोध	श्रीमती प्रेमवती एम. ए., बी. एड., दतिया	१८
७. श्री गुरुदेवजी का स्वरूप व उनकी महिमा	श्री राधाकृष्ण (किशन जी)	१९
८. जगत-जीवन के अधिष्ठाता–देवाधिदेव भगवान शंकर	श्री पं रामभूति चतुर्वेदी	२६
९. अपनी-अपनी बात	श्री दुष्यन्तसिंहजी सीसोदिया जेलर जिला जेल बुलन्दशहर	३१
१०. प्रेम-सागर भटियाना	श्री आनन्दस्वरूप सिंघल हापुड़ (मेरठ)	३६
११. भटियाना में योग-प्रचार समारोह (आश्रम समाचार)	श्री राधाकृष्ण शर्मा (किशन जी)	३८
१२. जिज्ञासायें और समाधान		४१
१३. सचित्र योगासन व उनसे लाभ		४४
१४. सत्यं शिवं सुन्दरम्	श्री वनवासी	५०
१५. गुरु पूर्णिमा समारोह	निज सम्वाददाता द्वारा प्रेषित	५२

संयुक्त सम्पादक
श्री 'दिव्य'

मध्य प्रदेश के शिक्षा विभाग तथा उत्तर प्रदेश के पंचायतराज द्वारा पाठशालाओं, वाचनालयों, पुस्तकालयों और समस्त पंचायतों के लिए स्वीकृत।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिकपत्र

वर्ष ३ अङ्क ५

अगस्त १९७०

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

शाश्वत — सनातन

शाश्वत ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः॥
असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः॥

वे ही शाश्वत परब्रह्म हैं और वे ही अविनाशी सनातन ज्योति हैं। मनीषी पुरुष उन्हीं की दिव्य लीलाओं का संकीर्तन किया करते हैं।

उन्हीं से असत् सत् तथा सदसत्—उभयरूप सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है। उन्हीं से सन्तति (प्रजा), प्रवृत्ति (कर्तव्य-कर्म), जन्म-मृत्यु तथा पुनर्जन्म होते हैं। —महाभारत-आदिपर्व

हमारा विशेष लेख :—

श्रीकृष्ण का शक्तिपात

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

गीता के प्रारम्भ में अर्जुन के प्रार्थना करने पर जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने उसके रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दिया। अर्जुन के मन में यह प्रबल इच्छा थी कि इस लड़ाईके घोर संग्राममें उसके साथ किन-किन लोगों से लड़ाई करनी है यह देखूं। जब उसने देखा कि उसके सामने भीष्म पितामह द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण आदि-आदि महारथी हैं और वे सभी उसके अपने रिश्तेदार एवं कुटुम्बी हैं तो यह सब दृश्य देखकर उसको बड़ा मोह हुआ और मैं लड़ाई नहीं करूँगा। यह कहकर चुपचाप बैठ गया और उसने कह दिया :—

यदि माम प्रतीकारम-
शस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रारणे हन्यु-
स्तन्मेक्षेमतरं भवेत् ॥

अर्थात् यदि धृतराष्ट्र के पुत्र मुझ चुपचाप बैठे को मार डाले तो उसमें भी मेरा भला है किन्तु इस युद्ध के करने में मेरा भला नहीं है। अर्जुन के अधैर्यपूर्ण वचनों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण जी ने उसको उसका कर्त्तव्य समझाया और स्पष्टरूपेण कहा—

कुतस्त्वा कश्मल मिदं,
विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्य-,
मकीर्तिकरमर्जुन ॥
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ,
नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं,
त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

अर्थात् हे अर्जुन इस विषम समय में तुम में यह अकीर्तिकर अनार्यों से सेवित पाप कहाँ से उपस्थित हो गया है। इस कायरता को छोड़ दे यह तेरे लिए उचित नहीं है। हृदय की दुर्बलता को छोड़ कर खड़ा हो जा और लड़ाई कर—भगवान के इस आदेश को अर्जुन ने स्वीकार नहीं किया और उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—

कथं भीष्म महं संख्ये,
द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि,
पूजार्हावरिसूदन ॥

अर्थात हे मधुसूदन! मैं भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ में तीखे बाणों से कैसे लड़ाई करूँगा, जो हमेशा मेरे पूजा के योग्य है। हे मधुसूदन—

गुरु न हत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके॥

हे प्रभो! महानुभाव लोगों को मारकर रुधिर में सने हुए भोगों को भोगने की अपेक्षा भीख मांग कर खा लेना भी श्रेष्ठ है। इसलिए मैं अब लड़ाई नहीं करूंगा। अर्जुन के ऐसा करने पर भगवानने उसको अनेक प्रकार से क्षत्रिय धर्म का उपदेश किया एवं लड़ाई के लिये प्रेरित किया किन्तु अर्जुन किसी भी प्रकार से तैयार नहीं हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने उसको पूरी विवेचना के साथ आत्मधर्म समझाया और आत्म-धर्म को समझाते हुए स्पष्ट कह दिया :—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि,
नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो,
न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम-
क्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणु-
चलोऽयंसनातनः॥

अर्थात् यह समझा करके आत्म-स्वरूप का प्रति पादन करके उसको युद्ध के लिये तैयार करना चाहा किन्तु अर्जुन के मन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। भगवान ने उसको सभी प्रकार से समझाया और अन्त में श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय में अपनी बहुत बड़ी विभूतियों का वर्णन किया और उसे अक्षरशः समझा कर बतला दिया फिर भी अर्जुन के मन पर कुछ असर नहीं हुआ और उसने पुनः स्पष्ट कह दिया —

मदनुग्रहाय परमं,
गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन,
मोहोऽयं विगतोमम॥
भवाप्ययौ हि भूतानां,
श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष,
महात्म्यमपि चाव्ययम्॥
एवमेतद्यथात्थ त्व-,
मात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामिते रूप-
मैश्वरं पुरुषोत्तम॥
मन्य से यदि तच्छक्यं,
मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं,
दर्शयात्मानमव्ययम्॥

अर्जुन ने कहा हे प्रभो अध्यात्म संचित जो कुछ भी आपने मुझ पर अनुग्रह करके कहा उससे मेरा मोह सब प्रकार से दूर हो गया और संसार की उत्पत्ति और प्रलय का सब विवरण मैंने आपके मुख से सुन लिया। हे परममेश्वर यह सब कुछ ठीक है जो कुछ आप कह रहे हैं किन्तु मैं आपके ईश्वरीय रूप को देखना चाहता हूं। हे योगेश्वर यदि आप यह समझते हैं कि मैं देख सकूंगा तो कृपा करके अपना अव्यय रूप मुझे दिखला दीजिये। भगवान ने उसकी बात का उत्तर दिया :—

पश्य मे पार्थ रूपाणि,
शतशोऽथ सहस्रशः॥

नानाविधानि दिव्यानि ,
नानावर्णाकृतीनि च ॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रा-
नश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्य दृष्ट पूर्वाणि ,
पश्याश्चर्याणि भारत ।
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं ,
पश्याद्य सचराचरम् ॥
ममदेहे गुडाकेश ,
यच्चान्यद्द्रष्टु मिच्छसि ।

भगवान ने उसका उत्तर दिया कि हे अर्जुन ! नाना प्रकार के दिव्य वर्णों से युक्त सैकड़ों हजारों मेरे रूपों को आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार और मरुतों को देख जो अब तक तूने नहीं देखा हो वे सभी प्रकार के आश्चर्य मेरे शरीर के अन्दर देख ले किन्तु ठहर :—

न तु मां शक्य ,
द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः
पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

मुझे तू इन अपनी आँखों से नहीं देख सकता है इसलिये मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूं मेरे दिये हुए दिव्य चक्षुओं के द्वारा मेरे योग ऐश्वर्य को देख । यह कह कर जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन पर शक्ति-संचार किया । इसके फलस्वरूप उसको दिव्य दृष्टि मिली । श्रीकृष्ण की कृपापूर्वक उस दिव्य दृष्टि को पाकर अर्जुन ने उनके विश्वरूप को देखा और विस्मयाविष्ट होकर हाथ जोड़ करके स्तुति की :—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥
किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता
दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥
अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।

स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्ध संघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥
रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वालोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ।
नभः स्पृशं दीप्तमकेनवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥
दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥
अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥
यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥
लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्त माद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥

अर्थात् अर्जुन ने कहा—हे देव ! मैं आपके शरीर में सब देवताओं और भूतविशेषों के संग को देखता हूं। कमलासनस्थ ब्रह्मा जी को देखता हूं। बड़े-बड़े ऋषि, मुनि और सर्पों को देखता हूं। आपकी बहुत भुजायें हैं, बहुत मुख हैं, आप अनन्त रूप हैं, न आपका आदि है और न अन्त है। हे विश्वेश्वर ! विश्वरूप आप अनन्त हैं। मैं आपको मुकुटधारी, गदाधारी, चक्रधारी चारों तरफ चमकते तेजधारी और ज्वलमान प्रदीप्त अग्नि की तरह से चारों ओर से देख रहा हूं, आपका आदि, अन्त कुछ भी नजर नहीं आता। शशि, सूर्य आपके नेत्र मालूम पड़ते हैं, आपके मुख में जाज्वलमान अग्नि जल रही है। आप अपने तेज से

सारे विश्व को जला रहे हैं। पृथ्वी और आकाश के बीच का अन्तर आपने व्याप्त कर दिया है। आपके इस उग्र रूप को देखकर मैं और सभी व्यथित हो गये हैं। ओह! कैसे आश्चर्य की बात है यह देवताओं के समूह आप में प्रवेश कर रहे हैं, कोई-कोई डरे हुए हाथ जोड़कर स्तुति कर रहे हैं। स्वस्ती-स्वस्ती कह कर महर्षि तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, मरुत, गन्धर्व, यक्ष और सुर-सिद्ध तुम्हें विस्मित आँखों से देख रहे हैं। तुम्हारा रूप बहुत बड़ा है, बहुत मुख और नेत्र हैं। बहुत-सी जंघायें और पादतल हैं। कराल तुम्हारी दाढ़ी है। तुम्हारे इस रूप को देख कर सारे व्यथित हो गये हैं। मैं भी डर गया हूं। तुम्हारा यह रूप आकाश को छुए हुए है। अनेक वर्णों वाला है, तुमने अपने मुख को विशालता के लिए खोला हुआ है। हे प्रभो! तुम्हें देखकर मेरा आत्मा डर गया है और शान्ति को नहीं पा रहा हूं। कालानल के समान फैले हुए तुम्हारे मुख को देख करके मुझे दिशाओं का ज्ञान भूल गया है।

हे जगन्निवास! आप किसी प्रकार मुझ पर खुश हो जाँय। ओह! यह क्या आश्चर्य की बात है? धृतराष्ट्र के सारे पुत्र तुम्हारे मुख में घुसे जा रहे हैं और भी राजे-महाराजे तुम्हारे मुख में घुसे जा रहे हैं। ओह! भीष्म, द्रोण और ये देखो सूत-पुत्र कर्ण एवं हमारे भी योद्धा तुम्हारे मुखमें घुसे जा रहे हैं। ये सब भाग-भाग कर तुम्हारे मुख में प्रवेश कर रहे हैं। तुम्हारी कराल दाढ़ी दुनिया को भय दे रही है। कोई-कोई महारथी तुम्हारे दांतों में चिपके हुए मालूम पड़ते हैं। मालूम पड़ता है आप सबको चबा रहे हैं। जैसे बहुत-सी नदियां अपने वेग से समुद्र की ओर बड़े वेग से दौड़ती हैं उसी प्रकार से ये नर लोक के जीव आपकी ओर भाग करके आप में प्रवेश कर रहे हैं। जैसे धधकती अग्नि में अपने नाश के लिए पतंगे प्रवेश करते हैं उसी प्रकार ये मनुष्य-लोक के जीव आप में प्रवेश कर रहे हैं। आप सबको चबा रहे हैं। हे विष्णु! आप का बहुत विपुल तेज है। हे उग्ररूप! कृपा करके आप बतलावें आप कौन हैं? मैं आपके आदि-अन्त को जानना चाहता हूं। अर्जुन के इस प्रश्न का भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया :—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥

अर्थात् मैं काल हूं संसार का नाश करने के लिये आया हूं। देख जितने जो भी योद्धा बैठे हुए तेरे बिना सब मारे जायेंगे इसलिये खड़ा हो—लड़ाई ले। शत्रुओं को जीत कर लड़ाई ले। मैंने ही सारे मार दिये हैं इसलिये तू बहाना बनकर सामने खड़ा हो जा। भीष्म, द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण आदि योद्धाओं को मेरे मारे हुओं को तू मार—लड़ाई कर तू सब को जीतेगा अवश्य।

इस प्रकार विश्व-आत्मा भगवान श्रीकृष्ण द्वारा दिव्य दृष्टि देकर के अर्जुन को अपना रूप समझाया। उनके विराटरूप को देखकर वह भयभीत हो गया और उसने विविध प्रकार से उनकी स्तुतियां की।

अर्जुन ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा कि—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः॥
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥

अर्थात् हे हृषिकेश ! तेरी कीर्ति से सारा संसार खुश हो रहा है। भयभीत हुए राक्षस लोग दिशा-प्रदिशाओं को भाग रहे हैं और सिद्धों के समूह तुम्हें नमस्कार कर रहे हैं। हे प्रभो ! आप आदि-कर्त्ता ब्रह्मा से भी बड़े हैं और सत्-असत् से परे प्रणव-स्वरूप आप ही हैं तो ये लोग आपको नमस्कार क्यों नहीं करें। तुम इस संसार के आदि कारण हो और पुराण-पुरुष हो। जानने योग्य परम तत्त्व के वेत्ता हो और अनन्त रूप हो। वायु, यम, अग्नि, वरुण और शशांक प्रजापति और प्रपितामह यह सब कुछ आप ही हैं इसलिए मैं हजारों बार और बार-बार नमस्कार करता हूं। तुम्हारे सामने से नमस्कार है, तुम्हारे पीछे से नमस्कार है। मैं आपको चारों ओर से नमस्कार करता हूं। हे अनन्त वीर्य विक्रम शाली ! तुम सारे संसार को फैलाते हो और अन्त में अपने में ही लीन कर लेते हो। हे प्रभो ! मैंने आपको अपना सखा समझ करके हे कृष्ण ! हे सखा ! जो कुछ भी अनुचित कहा गया है वे सब कुछ आपकी इस महिमा को न जानते हुए कहा है और या प्रमाद व प्रणय-वश होकर कहा है और जो कुछ भी उपहास पूर्वक आपका विहार-शैयासन भोजनादि में एक बार, अनेक बार असत्कार किया है वह मैं अप्रमेह स्वरूप आप से क्षमा चाहता हूं। तुम सारे संसार के पिता हो। एवं सारे संसार के पूज्य एवं गुरुओं के गुरु हो। तुम्हारे समान संसार में कोई नहीं है तुमसे बड़ा तो होना ही क्या था इसलिये हे सर्वथा पूजन योग्य मैं अपने को झुका कर आपको खुश करता हूँ। हे प्रभो जिस प्रकार से पिता अपने पुत्र के अपराधों को क्षमा करता है। सखा अपने सखा के अपराध को क्षमा करता है पति अपनी पत्नी के अपराधों को क्षमा करता है इस प्रकार हे प्रभो आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। हे जगन्निवास आपके अदृश्य इस रूप को देखकर मेरा मन अत्यन्त हर्षित हो गया है। और भय से मैं बहुत ही व्यथित हो गया हूँ इसलिये हे देवेश आप मुझ पर प्रसन्न होकर वही अपना सौम्य चतुर्भुज रूप दिखायें जिसमें गदा, पद्म, मुकुट, चक्र आदि धारण किये हुए हों।

अर्जुनको अत्यन्त व्यथित और डरा हुआ देखकर परम योगी भगवान श्रीकृष्ण ने अपना सौम्य मानुष रूप दिखाया इसको देखकर अर्जुन अपनी प्रकृति में स्थित हुआ, जगदात्मा ने उसको आश्वासन दिया कि हे अर्जुन ! मेरे इस विश्वरूपको देवता भी दर्शनाकांक्षी हैं। किन्तु किसी प्रकार की तपस्याचर्या वेदपाठ यज्ञ दान आदि से मैं इस प्रकार नहीं देखा जा सकता हूं। अनन्य प्रेम के द्वारा ही मेरे इस दिव्य-रूप को देखा जा सकता हूं इसलिये हे अर्जुन तुम डरो मत मैंने कृपा-पूर्वक यह दिव्य-रूप तुम्हें दिखाया है। अर्जुन

[शेषांश पृष्ठ ३० पर पढ़िये]

गीता-ज्ञान-सार

[श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर', शङ्कर-निवास, झाँसी (उ.प्र.)]

अंतःकरण पवित्र हो, हो विशुद्ध-व्यवहार,
उस साधक का हो सफल, यह असार-संसार।
कर्म-धर्म-रत नर स्वयम्, होता परम प्रसिद्ध,
सात्विक-साधक से बने, 'शङ्कर' साधक सिद्ध।
खलते जिस को हैं नहीं, भीषण जग-दुख-द्वन्द,
वह मानव ही अंत में, पाता परमानन्द।
गीता-गुरु-गरिमा-गहन, राम-कृष्ण उपदेश,
सत्य, अहिंसा का सुखद, है गाँधी-सन्देश।
घर की माया से विरत, पर-सेवा में मग्न,
वह मानव है धन्य जो, रहे कर्म-संलग्न।
चित्त जहाँ चंचल हुआ, तब देता सद् पंथ,
साधक मन को थिर करें, लिखते धार्मिक-ग्रंथ।
छल-छन्दों से जो धनिक, धरते धन को जोड़,
वे अशान्त रहते सदा, है निकृष्ट धन-होड़।
जग-जन जितना ले स्वयम्, कर दूना दे दान,
उऋण रहे ऋण से सदा, यह युग युग का ज्ञान।
झूँठा भौतिक-सुख सभी, सच्चा सात्विक-कर्म,
साधक समझे स्वयम् ही, है उस का यह धर्म।

⁂

गुरु की सेवा से ब्रह्मज्ञान

(सत्यकाम जाबाल की कथा)

[श्री सुरेन्द्रबहादुर एम. ए.]

हमारे शास्त्रों का उपदेश है :—

गुरुभक्तिं सदा कुर्यात्
श्रेयसे भूयसे नरः ।

अर्थात्—जो मनुष्य अपना परम कल्याण चाहता है उसे गुरु-भक्ति करनी चाहिये। गन्धर्व तन्त्र कहता है :—

यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं
वर्तते देववत् प्रिये ।
तस्य सर्वार्थ-सिद्धि
स्यान्नान्यथा खलु पार्वति ॥

अर्थात्—जिसकी गुरु में सर्वदा ईश्वर-तुल्य भक्ति रहती है, उसके सारे उद्देश्य सिद्ध हो जाते हैं। गुरु-भक्ति के अतिरिक्त सर्वार्थ-सिद्धि का कोई अन्य उपाय नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से उद्धव से कहते हैं :—

आचार्यं मां विजानीया-
न्नावमन्येत कर्हिचित् ।

अर्थात्—गुरु को मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये, उनकी अवज्ञा कभी नहीं करनी चाहिये।

गुरुदेव की केवल आज्ञा का प्रसन्नता-पूर्वक पालन करके सत्यकाम किस प्रकार परम श्रेय का भागी बना, यह हमें छान्दोग्य-उपनिषद् से ज्ञात होता है।

जबाला नाम की एक ब्राह्मणी थी। उसके पुत्र का नाम सत्यकाम था। जब सत्यकाम कुछ बड़ा हुआ तो एक दिन उसने अपनी माता को सम्बोधित करके निवेदन किया—'हे पूजनीये ! मैं स्वाध्याय-ग्रहण के लिए ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुल में निवास करना चाहता हूं। यदि गुरुदेव मुझसे मेरे गोत्र का नाम पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? मुझे मेरा गोत्र ज्ञात नहीं है। अतः मां ! मुझे मेरे गोत्र का नाम बता दें।' जबाला ने उत्तर दिया—'हे तात ! तू किस गोत्रवाला है इसे मैं नहीं जानती। पहले मैं पति के घर आनेवाले बहुसंख्यक अतिथियों की सेवा-टहल करनेवाली परिचारिका थी। परिचर्या में संलग्न रहने के कारण गोत्र आदि की ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया। उन्हीं दिनों युवावस्था में जब मैंने तुझे प्राप्त किया अर्थात् तू पैदा हुआ तो तेरे पिता परलोकवासी हो गये, अतः उनसे भी पूछ न सकी। इस प्रकार मैं केवल इतना ही जानती हूं कि मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है। अतः तू अपने को "सत्यकाम

जाबाल' बतला देना।" माता की आज्ञा पाकर सत्यकाम ने महर्षि हरिद्रुम के पुत्र गौतम ऋषि के पास जाकर कहा—"भगवन्! मैं ब्रह्मचर्य-पालन पूर्वक वेदादि का अध्ययन तथा आपकी सेवा करना चाहता हूं, आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें" तब गौतम ऋषि ने पूछा, 'हे सौम्य! तुम्हारा गोत्र क्या है?" सरल स्वभाव वाले बालक सत्यकाम ने विनय पूर्वक उत्तर दिया, "प्रभो! मैं अपना गोत्र नहीं जानता। मैंने माता से पूछा था। उसने मुझे उत्तर दिया कि 'पहले मैं पति के घर आये हुए बहुत से अतिथियों की सेवा टहल करने वाली परिचारिका थी। परिचर्या में संलग्न रहने के कारण गोत्र आदि की ओर मेरा ध्यान नहीं गया। उन्हीं दिनों युवावस्था में जब मैंने तुझे प्राप्त किया तेरे पिता परलोकवासी हो गये, अतः उनसे भी न पूछ सकी। इसलिए मैं केवल इतना ही जानती हूं कि मेरा नाम जबाला तथा तेरा नाम सत्यकाम है।' अतः हे गुरो! मेरा नाम सत्यकाम जाबाल है। सत्यकाम के सरल हृदय से निकली हुई सरलतापूर्ण सत्य बातको सुनकर गौतम ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहने लगे, "वत्स सत्यकाम! अब मैं समझ गया कि तुम निश्चय ही ब्राह्मण हो, क्योंकि ब्राह्मण के अतिरिक्त इस प्रकार सरलता पूर्वक सत्य बात अन्य कोई नहीं कह सकता। अतः हे सौम्य! तू समिधा ले आ, मैं तेरा उपनयन-संस्कार करूंगा, क्योंकि तूने सत्य का त्याग नहीं किया।" ऐसा कहकर आचार्य ने सत्यकाम का विधिवत उपनयन-संस्कार किया और चार सौ कृश और दुर्बल गायें देकर कहा "बेटा! जब तक ये चार सौ गायें एक हजार न हो जायें तब तक तुम इन्हें वन में चराओ और एक हजार होने पर लौटना। सत्यकाम ने उन गायों को ले जाते हुये कहा "जब तक इन गायों की संख्या एक हजार नहीं हो जायेगी तब तक मैं लौटकर नहीं आऊँगा।"

जब तक उन गायों की संख्या चार सौ से बढ़कर एक हजार नहीं हो गयी तब तक सत्यकाम बहुत वर्षों तक वन में ही रहा। जब वे गायें एक हजार हो गयीं तब एक दिन दिशाओं का अधिपति वायु सत्यकाम की गुरु-सेवा से प्रसन्न होकर एक सांड के देह में प्रविष्ट होकर बोला, हे सौम्य! हम एक सहस्र हो गये हैं, अब तू हमें आचार्य कुल में पहुंचा दे। मैं तेरी गुरुनिष्ठा से बड़ा प्रसन्न हुआ हूं, अतः मैं तुझे चतुष्पाद ब्रह्म के एक पाद का उपदेश करता हूं। पूर्व दिशा उस ब्रह्म के एक पाद का चौथा भाग है। इसी प्रकार पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशायें भी उस पाद की कलायें हैं। इस प्रकार चारों भाग या कलायें मिलकर उस ब्रह्म का एक पाद है। ब्रह्म के इस एक पादको प्रकाशवान पाद कहते हैं। हे सौम्य! अब तुम्हें दूसरे पाद का उपदेश अग्नि करेंगे।

दूसरे दिन प्रातः काल अपने नित्य कर्म से निवृत्त होकर सत्यकाम उन एक सहस्र

गायों को लेकर गुरुकुल के लिये रवाना हो गया। चलते-चलते मार्ग में जिस स्थान पर संध्या हो गयी, उसी स्थान पर उसने गायों को ठहरा दिया और अग्नि प्रज्वलित करके अग्नि के पश्चिम तरफ बैठ गया। अग्नि की वाणी सुनाई दी, 'सत्यकाम ! मैं तुमको ब्रह्म के एक पाद का उपदेश करता हूं। पृथ्वी कला है, अन्तरिक्ष कला है, द्युलोक कला है और समुद्र कला है। हे सौम्य ! यह ब्रह्म का 'अनन्तवान' नामक चतुष्कल पाद है। अब हंस तुमको तीसरा पाद बतलायेंगे।' ऐसा कहकर अग्नि चुप हो गया।

दूसरे दिन उसने गौओं को पुनः आचार्य कुल की ओर हांक दिया। वे सायंकाल जहाँ एकत्रित हुईं, वह उसी स्थान पर अग्नि प्रज्वलित कर गायों को रोक, समिधाधान कर अग्नि के पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। तब हंस ने उसके समीप उतर कर कहा—'सत्यकाम ! मैं तुम्हें ब्रह्म का पाद बतलाऊँगा। ध्यानपूर्वक सुनो। 'अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्रमा कला है और विद्युत कला है। हे सौम्य ! यह ब्रह्म का ज्योतिष्मान नामक चतुष्कल पाद है। अब मद्गु (एक प्रकार का जलचर पक्षी) तुमको चतुर्थ पाद का उपदेश करेगा।' ऐसा कहकर हंस चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसने गायों को पुनः गुरुकुल की ओर हांक दिया। वे सायंकाल जहाँ एकत्रित हुईं वहीं अग्नि प्रज्वलित कर गायों को यथास्थान रोक, समिधाधान कर अग्नि के पीछे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। मद्गु ने उसके पास उतर कर कहा,

'सत्यकाम ! मैं तुम्हें ब्रह्म का चतुर्थ पाद बतलाऊँगा। प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है। हे सौम्य ! यह ब्रह्म का आयतनवान नामक चतुष्कल पाद है।"

इस प्रकार गुरु के घर लौटते समय मार्ग में ही सत्यकाम ने गुरु-भक्ति के बल से चार देवताओं द्वारा ब्रह्म के चारों पादों का सोलह कलाओं के सहित ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसके मुख-मंडल पर एक दिव्य तेज दिखलायी देने लगा। गुरुकुल में पहुंचने पर गुरुदेव उस गुरु-आज्ञा-पालक सत्यकाम के तेजयुक्त मुख-मंडल को देख प्रसन्न होकर बोले, "बेटा ! तू ब्रह्मवेत्ता-सा भासित हो रहा है; तुझे किसने उपदेश दिया है ?" सत्यकाम ने विनीत भाव से उत्तर दिया "प्रभो ! मनुष्यों से भिन्न देवताओं ने मुझे उपदेश दिया है।" सत्यकाम के मनुष्यों से भिन्न' कहने का तात्पर्य यह है कि जब उसे सद्गुरु की प्राप्ति हो गयी है तो वह किसी दूसरे मनुष्य का उपदेश कैसे ले सकता है ? एक सच्चे सद्गुरु के शिष्य को उपदेश देने में कोई भी मनुष्य समर्थ हो ही नहीं सकता। अपने गुरुदेव में निष्ठा रखने वाला शिष्य किसी दूसरे व्यक्ति के पास ज्ञानोपदेश प्राप्त करने नहीं जाता वरन् देवता गुरु-भक्ति से प्रसन्न होकर स्वतः ही उसे उपदेश करने

जाते हैं।

सत्यकाम ने आचार्य से प्रार्थना की, "भगवन्! यद्यपि देवताओं ने कृपा पूर्वक स्वतः आकर मुझे ज्ञानोपदेश किया है, तथापि मेरी इच्छा है कि आप पूज्यपाद ही मुझे उस विद्या का उपदेश करें। मैंने श्रीमन्-जैसे ऋषियों से सुना है कि गुरुदेव के मुख से सुन कर जानी गयी विद्या ही अतिशय फल प्रदान करने वाली होती है।" तब आचार्य ने उसे उसी विद्या का उपदेश किया। गुरुदेव की कृपा से सत्यकाम का ज्ञान पूर्ण हो गया।

सत्यकाम की गुरु-भक्ति धन्य है। इस प्रकार का गुरु-भक्त और गुरु की सेवा करने वाला शिष्य ही वास्तविक तत्त्वज्ञान का अधिकारी होता है, और ऐसे ही गुरु-भक्ति-परायण शिष्य में परमतत्त्व प्रकाशित होता है।

श्रुति कहती है :—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा,
देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः,
प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात्, जिसकी भगवान् में पराभक्ति है और उसी प्रकार की भक्ति गुरुदेव में भी है उसी में वह आत्मतत्त्व प्रकाशित होता है।

व्यास स्मृति में लिखा है :—

गुरु मूलाः क्रियाः सर्वा,
भुक्ति मुक्ति फल प्रदाः।
तस्मात्सेव्यो गुरु नित्यं,
मुक्तार्थैस्तु समाहितैः॥

अर्थात्, भोग और मोक्ष का फल प्रदान करने वाली सम्पूर्ण क्रियायें गुरु की कृपा पर निर्भर हैं। अतः सर्वदा समाहित चित्त से श्री गुरुदेव की सेवा करनी चाहिये।

—×•×—

लोभमोहक्रुधां यस्य तनुतानुदिनं भवेत्।
यथाशास्त्रं विहरति स्वकर्मसु स सज्जनः॥

'जिसके सङ्ग से लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और जो शास्त्र के अनुसार अपने कर्मों का आचरण करने में लगा रहता हो, वह सत् पुरुष है।'

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥

'जो लोग उद्योग का त्याग करके केवल दैव के भरोसे बैठे रहते हैं, वे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थों का नाश कर डालते हैं। ये आलसी मनुष्य आप ही अपने शत्रु हैं।'

योगि-समाज का आविर्भाव

[श्री विजयसिंह एम. ए. रिसर्च स्कालर]

परम कल्याणकारी योग विद्या नूतन अनुमित अन्यविद्याओं की तरह मानव मस्तिष्क की उपज न होकर आदि काल में जब सृष्टि की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ से हुई तभी से अपने रूपान्तरित परन्तु अपरिवर्तनीय तथ्यों के साथ काल के प्रसार में सृष्टि की सहचरी रहते हुये अपने प्रभाव को देश काल के भेद से कहीं अधिक कहीं कम प्रकट करती रही है। इसी लिए हिरण्यगर्भादि ही इस विद्या के जनक माने जाते हैं। विद्या स्वयं शक्ति है। प्रारम्भ से जब मानव अपने अन्दर किसी भी विद्या का प्रकाश विकसित कर लेता है तो वह विद्या उस मनुष्य को जीवन पर्यन्त अपनी शक्ति से फल देती रहती है। इस योग रूपी परा विद्या को जानकर साधारण जीव अपने परम लक्ष्य को सहज ही प्राप्त कर लेता है। योग विद्या की प्रचण्ड शक्ति को प्रथमतः जनकल्याण के लिए भगवान सदाशिव जी ने संगठित एवं सुसज्जित रूप दिया। अतः वे इस महाविद्या के आदि गुरु कहलाये। कालान्तर में युगानुसार जीवों के मानसिक एवं शारीरिक सामर्थ्य को देखते हुये भगवान कपिल देव तथा योगाचार्य पतंजलि देव ने योग को शास्त्रवत रूप दिया जिससे प्रत्येक मुमुक्षुजन पात्रता-अनुसार योग को धारण कर सकें। किसी भी विद्या से प्रभावित जनसमूह विशेष सिद्धान्तों एवं संस्कृतियों को धारण करता हुआ अलग-अलग एक समाज बना लेता है। इसी लिए जब-जब भगवान सदाशिव जी की कृपा एवं इच्छा से इस महा विद्या का भूतल पर प्रचार हुआ, तब अत्यन्त ही लोक कल्याणकारी "योगि-समाज" का उद्भव होता रहा है। वे आदि नाथों के नाथ भगवान सदाशिव कभी-कभी स्वयं अंशावतार ग्रहण करके तथा कभी अपने महासिद्ध शिष्यों द्वारा पृथ्वी पर—भारत भूमि पर ही नहीं—अपितु समस्त संसार में योगरूपी अमृत का पान संस्कारी जीवों को करवाते रहे हैं तथा अब भी करवाते रहते हैं।

जिसके परिणाम स्वरूप भवबंधन तथा जन्म-मरण चक्र के असह्य दुःखों से निवृत्त होकर जीव परमतत्व में लीन होता रहता है, क्योंकि जीवात्मा भी सत् है। परमेश्वर का अंश होने के नाते उसको भी सनातन कहा गया है।

ममैवांशो जीवलोके
जीवभूतः सनातनः ।
—गीता । १५

गीता में परमकल्याणकारी योगयोगेश्वर श्रीकृष्ण जी ने कहा है कि सम्पूर्ण चराचर मेरा अंश है और समयान्तर से सभी मेरे को

ही प्राप्त होंगे। "महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ" नामक लेख के अन्तर्गत यह प्रगट रूप से वर्णन किया जा चुका है कि किस प्रकार से जीवों के कल्याणार्थ भगवान सदाशिव जी ने नव नारायणों को अवतार ग्रहण करके योग विद्या का मानव समाज में प्रचार करने की आज्ञा दी थी। सब से पहले नव-नारायणों में श्रेष्ठ कवि नारायण जी ने अवतार लिया तथा श्री मत्स्येन्द्रनाथ नाम से भगवान श्री सदाशिव जी से योग दीक्षा प्राप्त कर संसार में योग-प्रचार करने के लिये दत्तचित्त हुए। मत्स्येन्द्रनाथजी ने प्रथम योग रूपी अमोघ औषधि द्वारा जन्म-मरण रूपी दुस्तर रोग से संसारी प्राणियों को मुक्त कराने के लिए इधर-उधर प्रान्त-प्रान्त में भ्रमण करना शुरू कर दिये। संसारी जीवों को योग शक्ति के प्रबल अलौकिक चमत्कारों से अपनी ओर आकर्षित करके उनको यह बोध कराते थे कि विषयों के प्रबल प्रवाह में बहता हुआ प्राणी कितना अशक्त एवं दुःखी है। तथा उनकी अपनी अल्प शक्ति कठिन प्रवाह से विरहित कर सके यह सर्वथा असम्भव है। क्योंकि माया का भेद दुस्तर एवं दुर्गम है। दीनभाव से अपने से अधिक शक्ति वालों (देवता प्रेत अन्य शक्तियों की पूजा) के समक्ष याचना करने पर दयापूर्वक मिले फलों से जीवन-निर्वाह करता रहता है। अपने अन्दर छिपी असीम शाश्वत शक्ति को जागृत न कर सकने के कारण ही इधर-उधर काल के प्रवाह में मारा-मारा फिरता है। अन्ततोगत्वा कृतांत बड़ी ही निर्दयता के साथ यम-पाश में बाँध कर कठिन से कठिन दंड दिया करता है। यही जन्म-मृत्यु चक्र सबसे दुःखदायी है। अतः जगत-गुरु भगवान सदाशिव के बतायी हुई योग-विद्या का स्फुरण अपने अन्दर करो जिससे तुम भी हमारे तथा अपने पूर्वजों की भाँति इस संसार में हजारों वर्षों तक अदीनतापूर्वक रह कर लोक-कल्याण कर सको। पूर्ण योगवित् बनकर समाधि द्वारा अपने को तभी उस ब्रह्म में लीन कर सकोगे। जहाँ से तुम आये हो वहाँ पहुँचाने में यह योग ही एक मात्र सहज साधन है।

कठोपनिषद् के अन्तर्गत यम एवं नचिकेता संवाद बहुत ही चित्ताकर्षक है। यम के अनेकों प्रलोभनों को ठुकराकर हठपूर्वक नचिकेता योग-विद्या का ही उपदेश प्राप्त करना चाहता है और यम उसकी जिज्ञासा की सत्यता की कठिन परीक्षा लेने के लिये अनेक प्रलोभन देता है परन्तु उत्कट आत्मा नचिकेता कहता है—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो,
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं,
वरस्तु मे वरणीयः स एव॥
अजिर्यताममृतानामुपेत्य ,
जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदा-
नतिदीर्घे जीविते को रमेत॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो ,
यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो,
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥

अर्थात् द्रव्य से तृप्त नहीं होता। धन आपकी कृपा से मिल जावेगा। आप जब तक शासन करते रहेंगे आपके अनुग्रह से मैं जीवित भी रह लूंगा; परन्तु मैं तो वही वर चाहता हूं जो मैंने माँगा है। जरा रहित देवों के समीप जाकर जरामरणयुक्त तथा पृथ्वी रूपी अध: स्थान में रहा हुआ कौन पुरुष अनित्य वस्तु को चाहेगा। रूप, क्रीड़ा और उससे उत्पन्न सुख को अनित्य जानकर कौन पुरुष लम्बी आयु से सन्तुष्ट होगा? हे मृत्यो! परलोक सम्बन्धी आत्मतत्व में जो शंका की जाती है। वह आत्म विज्ञान ही मुझसे कहिये इस गूढ़ वर के अतिरिक्त नचिकेता और कुछ नहीं माँगता।

नचिकेता ने उपरोक्त श्लोक में संसारी वस्तुओं से उत्पन्न सुखों को अनित्य बतलाकर ठुकरा दिया। ऐसे उत्तम भावोंवाले जीवात्मा इस संसार मे कम ही होते हैं। परन्तु फिर भी परम कृपालु प्रभु सर्वदा युगानुसार योग शक्ति का जीवों में अधिष्ठान करते हुये उस परमतत्व का बोध कराते रहते हैं। अत: श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी के उपदेश को प्राप्त करके शुभ जीव (सत्व प्रधान व्यक्ति) तुरन्त ही करबद्ध होकर विनय करने लगते थे—हे योगिराज जी! आप जब मुझ दीनों पर कृपा करने के हेतु अपने पवित्र धाम को छोड़ कर आवे हैं तो अतिलोक्य योग का रहस्य क्रियात्मक रूप से समझाकर, हमें उस परम तत्व का ज्ञाता एवं अद्भुत शक्ति का स्वामी बना दें, और हुआ भी इसी प्रकार से, स्थान-स्थान पर श्री मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा एवं योग-शक्ति से लाभान्वित जनसमुदाय द्वारा योग-महिमा का कीर्ति प्रसार दिन-दूना रात चौगुना दिग-दिगान्तों में फैलना शुरू हो गया। क्लिष्ट रोगों, सांसारिक विपत्तियों, प्रेत, बैताल आदि क्लेशों से पीड़ित जन ऐसे महापुरुष के शरण ग्रहण करने से ही उपरोक्त दुःखों से निस्तार पाने लगे। क्षुद्र मानसिक भावों से पीड़ित जनों को योग-मार्ग में लगाकर उनको मानसिक शान्ति देने के कारण श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी की कीर्ति के साथ-साथ योग का विस्तार जन-मानस में व्याप्त होता गया। योग जीवन का एक अभिन्न अंग हो गया। जिन्होंने मात्र योग के बारे में सुन रक्खा था, वे सदा इस आशा में रहा करते थे कि दैव संयोग से यदि योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ इधर पधारते तो हम जैसे दीन-हीन प्राणी भी अवश्य ही कृत-कृत हो जाते। समयान्तर से कृपा पात्र सद्-गृहस्थों के गृह में अन्य नारायणों ने अवतार ग्रहण किया। कुछ लोगों को श्री मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा योग-दीक्षा प्राप्त हुई तथा आगे चलकर श्री सदाशिव जी के अंशावतार श्री गोरखनाथ (जो कि मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे) द्वारा अन्य नारायणों

को योगदीक्षा मिली। इनके अन्दर योग पूर्व से ही व्याप्त था अतः अल्पकाल में पूर्ण योगवित् बनकर ये सभी महासिद्ध भगवान आदिनाथ की आज्ञानुसार योग-प्रचार द्वारा जन कल्याण करने में लग गये। ये आगे चलकर श्री ज्वलेन्द्रनाथ, श्री कारिणपानाथ, गहनिनाथ, चर्पटनाथ, नागनाथ, भर्तृहरि एवं गोपीचन्द के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुये। इस योग-प्रचार के अन्तर्गत अन्य चौरासी सिद्धों का नाम भी आता है जिन्होंने अपने-अपने गुरुदेव की आज्ञाओं से योग का चतुर्दिक प्रचार किया। ये सभी महासिद्ध देश-देशान्तरों में अलग-अलग भ्रमण करते हुये शुभ जीवों को योग दीक्षित करके संसार रूपी भव सागर से पार जाने के लिये योग रूपी दृढ़ जलयान का सार समझाते हुये परम तत्त्व का उपदेश करते थे, जिसके फलस्वरूप जगह-जगह अलौकिक चमत्कारों की झड़ियाँ हुआ करती थीं। योग प्रचार का यथार्थ रूप समाज में प्रकट करने के लिए इन योगाचार्यों ने समय-समय पर संस्कारी जीवों के बीच विविध प्रकार की योग लीला की जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन अन्य लेखों में किया जायेगा। इन अद्भुत लीलाओं के सामान्य रूप से दो फल हुए। प्रथम जो शिष्य (साधक) योग-शक्ति का अपने अन्दर कुछ विकास कर चुके थे वे और दृढ़ तथा संयमित भावों से परम लक्ष्य (समाधि) को प्राप्त करने के लिये उद्यत हुये। दूसरे अबोधजन उन चमत्कारों से प्रभावित होकर रूढ़िवादी क्षुद्र भावनाओं को छोड़कर परम कल्याणकारी योग-विद्या को धारण करने लगे। फलस्वरूप चन्द वर्षों के दृढ़ एवं संयमित साधना से अनेकों जन्म-जन्मान्तरों से भटकता जीव समाधि रूपी अंतिम मंजिल पर पहुँचकर अनन्त सुख को प्राप्त करने लगा। भगवान सदाशिव जी की कृपा तथा महासिद्ध योगिराजों के सानिध्य को पाकर मनुष्य थोड़े ही प्रयास से योग को प्राप्त होने लगे। योग का प्रचार ऐतिहासिक रूप से प्रायः सारे संसार में ही हुआ। विशेषतः समस्त भारतवर्ष, नेपाल, तिब्बत, भूटान, चीन तथा इसके समीपवर्ती उत्तरी भाग, पश्चिम की ओर प्रमाणतः पेशावर तथा अरब देशों में मक्का तक फैला। इन देशों में योग-प्रचार करते हुये योगाचार्यों ने अनेकों अलौकिक लीलायें कीं, जिनका विशद वर्णन कई ग्रंथों में मिलता है।

भगवान सदाशिव जी के दृढ़ संकल्प से वृहद योगिसमाज स्वयमेव बन गया। जिनका अपना सिद्धान्त था ये सिद्धान्त अब भी अटल हैं। काल इन सिद्धान्तों को कभी नष्ट नहीं कर सकता। क्योंकि समाधि की उच्च भूमिकाओं में स्वतः प्रकट हुए नियम ही योगियों के लिए सिद्धान्त हुआ करता है। यह दूसरी बात है कि युग व्यतीत होने पर आनेवाली पीढ़ी उन सिद्धान्तों से हट गई। इसका एकमात्र कारण अपात्रताके साथ-साथ मनुष्योंमें असंयमित भावों का उदय होना ही है। अतः योगि-समाज सर्वदा किसी महासिद्ध

सद्गुरुदेव के नेतृत्व में ही पनपता है तथा ऐसे महापुरुषों के अभाव में साधक अर्थ का अनर्थ करता हुआ स्वयं तथा सारे समाज को गर्त की ओर अग्रसर कर देता है। भगवान जगदात्मा श्रीकृष्ण जी ने अपने परम प्रिय शिष्य अर्जुन को योगी बनने की आज्ञा प्रदान किये:—

अतः हम सभी मनुष्यों को भी परम कल्याणकारी योग का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। वे जीव परम लक्ष्य से अधिक दूर नहीं है जिनको सद्गुरु सत्ता का वरद्हस्त प्राप्त है। वे भगवान सदाशिव जी ही भिन्न-भिन्न रूपों में योग का प्रचार करते रहे हैं व करते रहेंगे। अतः श्रद्धापूर्वक योग को धारण करने वाला व्यक्ति मोक्ष से दूर भी नहीं है ऐसा हर प्रकार से समझ लेना चाहिये। "योगि समाज" के प्रभाव में साधारण जीव भी अपने परमलक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। क्योंकि एक ध्यान योगी जिस स्थान पर रहता है वह देश का देश पवित्र हो जाता है उसके कुल के अन्य पुरुषों का तो कहना ही क्या?

अनुरोध

(श्रीमती प्रेमवती एम० ए०, बी०-एड० दतिया)

तुम आओ न आओ, सदा मैं सखे,
निशि-वासर ही तुमको बुलाया करूँ।
तेरे नाम की माला सदा मोहन,
मन के मन का मैं फिराया करूँ॥
तुम जान अयोग्य बिसारो मुझे,
पर मैं न तुम्हें बिसराया करूँ।
तेरे भक्तों की भक्ती करूँ मैं सदा,
तेरे चाहने वालों को चाहा करूँ॥
अब जग में रहूं तो ऐसे रहूं,
ज्यों जल में कमल का फूल रहे।
जहाँ देखूं मैं रूप तेरा ही हो,
तेरा रूप ही मन में बसाया करूँ॥
मृदु मंजुल भावों की माला बना,
फिर प्रेम-प्रसून चढ़ाया करूँ।
जब तक न मिटे यह "अहं" मेरा,
नित तेरे ही गुण को गाया करूँ॥

श्री गुरुदेवजी का स्वरूप व उनकी महिमा

[श्री राधाकृष्ण (किशन जी)]

मेरे श्री गुरुदेवजी गुरुदेव की महिमा को बतलाते हुए अपने व्याख्यानों में कहा करते हैं कि 'सत्तावच्छेदनार्थेन कालेनोपावर्तते स गुरुः' अर्थात् जिस सत्ता का काल अन्त नहीं कर सकता, उसी सत्ता का नाम गुरु है। उसकी महिमा को वर्णन करते हुए उपनिषदों में स्पष्ट किया गया है :—

भयादस्याग्निस्तपति,
भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च,
मृत्युर्धावति पंचमः॥

अर्थात् जिसके भय से अग्नि और सूर्य तपते हैं, इन्द्र और वायु कांपते हैं, काल दौड़ता-फिरता है—उस ही सत्ता का नाम सद्गुरु-सत्ता है। गुरुदेव जी के स्वरूप का बखान करते हुए भगवान् शिव ने कहा है:—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही साक्षात् शिव है और श्री गुरुदेव ही परब्रह्म है। इसलिए उन श्री गुरुदेव जी को नमस्कार है। शास्त्र का वचन है :—

यस्य देवे परा भक्ति
यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्था
प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात् जिसको ईश्वर में भारी भक्ति है और जैसी ईश्वर में है वैसी ही श्री गुरुदेव में है। ऐसे श्रद्धावान् व्यक्ति को सकल अर्थ और विद्या प्रकाशित हो जाया करती है जो व्यक्ति श्रद्धावान् नहीं है उसके लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने मुखारविन्द से ये शब्द कहे हैं :—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च
संशयात्मा विनश्यति।

अर्थात् जो व्यक्ति ज्ञानरहित और अश्रद्धालु है और उसके साथ ही संशयात्मा है वह अपने स्थान से गिर कर अवश्य नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति श्रद्धालु है वह कभी-न-कभी अपने लक्ष्य को पा जाया करता है। भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखनेवाली भारतीय जनता अधिकांश में श्रद्धा की बहुत बड़ी प्रतीक है और इसी का फल यह निकलता है कि उसके मन में श्री गुरुदेव के प्रति पूर्ण ईश्वरीय बुद्धि होती है। गुरुदेव की आज्ञाओं का पालन करना व उनके वचन पर पूर्णरूपेण आरूढ़ रहना शिष्य का धर्म है।

गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं। एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की

श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने श्री मद्‌भगवद्‌गीता के १७ वें अध्याय में कहा है :—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य ,
श्रद्धा भवति भारतः ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो ,
यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

अर्थात् परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्दघन नित्य चेतन स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान व्यक्ति जिनके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में शंका का कोई स्थान नहीं।

जो मनुष्य गुरुभक्ति व मोह से अन्यथा कर बैठता है वह नष्टता को प्राप्त हो जाता है। अत्यन्त प्रबोध आनंद की प्राप्ति होना शक्तिपात का लक्षण है। कारण वह पराशक्ति प्रबोधानंद रूप वाला है। अन्तःकरण की विकसित आनन्द बोध का लिंग है जिससे कंप रोमांच स्वर नेत्रादि के विकार उत्पन्न होते हैं। इन शिष्यों के लक्षणों से शिष्य की परीक्षा करना उचित है। शिक्षणीय होने से शिष्य और गौरव के कारण से गुरु कहलाता है। इसलिये सब प्रकार से गुरु का सम्मान व आदर करना चाहिए।

यो गुरुस्स शिवः प्रोक्तो ,
यः शिवः स गुरुः स्मृतः ।
गुर्वा शिव एवाय ,
विद्या कारेण संस्थितः ॥

अर्थात जो गुरु है वही शिव है और जो शिव है वही गुरु है। शिव ही गुरु है। महा विद्याकार से संस्थित किया है।

यथा शिवस्तथा विद्या
यथा विद्या तथा गुरुः ।
शिव विद्या गुरुणां च
पूज्या सदृशं फलम् ॥

अर्थात् जैसे शिव वैसी विद्या जैसी विद्या वैसे गुरु है। अतः शिव की तथा विद्या और गुरु की पूजा के समान ही फल प्राप्त होता है।

भगवान शंकर ने स्वयं अपने मुखारविन्द से गुरु गीता का वर्णन करते हुये गुरुदेव के स्वरूप का वर्णन किया है।

अज्ञान तिमिरांधस्य
ज्ञानांजन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन
तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अर्थात् जिसने ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से अज्ञानरूपी अँधेरे में अंधी हुई आंखों को खोल दिया है उस गुरुदेव को नमस्कार है।

न गुरोरधिकं तत्त्व
न गुरोरधिकं तपः ।

गुरु ज्ञानात्परं तत्वं
तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अर्थात् गुरु से अधिक तत्त्व नहीं है। न गुरु से अधिक तप है। गुरु के ज्ञान से परं तत्त्व का ज्ञान होता है उस गुरु को नमस्कार है।

अखण्ड मण्डलाकारं
व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं एन
तस्मै श्री गुरुवे नमः।

अर्थात् जिसने अखण्ड मण्डलाकार चराचर को व्याप्त कर रखा है उस पद को जिसने दिखला दिया है उस गुरु को नमस्कार है।

स्थावरं जंगमं चैव-
मचरं चरमेव च।
येन व्याप्तं जगत्सर्वं
तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

जिसने स्थावर, जंगम, चर, अचर, सब जगत व्याप्त कर रखा है उस श्री गुरु को नमस्कार है।

ज्ञान शक्ति समारूढं
तत्व माला विभूषितम्।
भुक्ति मुक्ति प्रदातारं
तस्मै श्री गुरुवे नमः।

अर्थात् ज्ञानशक्ति पर आरूढ़ तत्त्व माला से शोभित, भोग और मोक्ष के देने वाले उस श्री गुरु को नमस्कार है।

शास्त्रों में गुरुदेव जी की महिमा का विशद् वर्णन मिलता है। भारतवर्ष में अनेक संत हुये हैं उन्होंने गुरुदेव की महिमा का भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन किया है।

स्वामी चरणदास जी ने कहा है कि यदि सद्गुरु की कृपा का साथ मिल जाता है तो इस राह में मिलनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि चोर जो रास्ता रोक कर लूट लेते हैं, वे सब दूर भाग जाते हैं। स्वामी चरणदास की शिष्या सहजोबाई ने अपना सर्वस्व श्री गुरुदेव जी के चरणों में न्यौछावर कर दिया है। जब शिष्य अपना सर्वस्व श्री गुरुदेव जी के चरणों में न्यौछावर कर देता है तो गुरुदेव उसकी हर क्षण रक्षा करते हैं।

गुरुदेव की महिमा सहजोबाई अपने शब्दों में वर्णन करती है :—

राम तजूं पर गुरु न बिसारूं।
गुरु के सम हरि को न निहारूं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा।
गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा ॥
हरि ने माया जाल में घेरी।
गुरु ने काटी ममता बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायो।
गुरु में आतम रूप दिखायो ॥

इस प्रकार सहजोबाई ने गुरुदेव की महिमा का वर्णन किया है। उनके हृदय में अपूर्व श्रद्धा व भक्ति थी। वह गुरु भक्ति में ओत-प्रोत रहा करती थीं। सहजोबाई आगे

और श्री गुरुदेव की महत्ता का वर्णन करती हैं :—

अष्टा दश और चारपट,
पढ़ पढ़ अर्थ कराहिं ।
भेद न पावें गुरु बिना,
सहजो सब भरमाहिं ॥
सब पर्वत स्याही करूँ,
घोरूँ समुन्द मझाय ।
सब पृथ्वी कागद करूँ,
गुरु गुन लिखा न जाय ॥

गुरुदेव की महत्ता का कहाँ तक वर्णन किया जाय, जितना उनके विषय में कहा जाय लेश मात्र ही है। वह आगे और भी कहती हैं :—

गुरु स्तुति कहाँ लौं कीजै ।
बदला कहा गुरुन को दीजै ॥
गुरु का बदला दिया न जाई ।
मन में उपजत है सकुचाई ॥
गुरु की किरपा अपरम्पारे ।
गुन गावत सब रसना हारे ॥
सहजो गुरु दीपक दियो,
रोम रोम उजियार ।
तीन लोक दृष्टा भये,
मिटो भरम अँधियार ॥

भक्त कबीरदास जी ने गुरुदेव जी के विषय में कहा है:—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े,
काके लागूँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने,
जिन गोविन्द दियो मिलाय ॥

कबीर दास जी कहते हैं कि यदि भगवान और गुरुदेव के साथ-साथ दर्शन हों तो सर्व प्रथम गुरुदेव को ही प्रणाम करे क्योंकि उनकी कृपा से ही भगवान का दर्शन हुआ है। श्री गुरुदेव की कृपा के बिना हरि कैसे प्रगट हो सकते हैं।

आगे लिखते हैं कि जो कुछ भी इस संसार में है वह गुरुदेव पर ही अर्पण कर दिया जाय। उन्होंने आगे कहा है :—

सब धरती कागद करूँ,
लेखनि सब बनराय ।
सात समुद की मसि करूँ,
गुरु गुन लिखा न जाय ॥
कबीर ते नर अंध हैं,
गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर हो,
गुरु रूठे नहिं ठौर ॥
गुरु बड़े गोविन्द ते,
मन में देख विचारि ।
हरि सुमिरे सो वार हैं,
गुरु सुमिरे सो पार ॥
यह तन विष की बेलरी,
गुरु अमृत की खान ।
सीस दिये जो गुरु मिलें,
तो भी सस्ता जान ॥

अर्थात् गुरुदेव ही सर्व शक्तिमान हैं। उनकी कृपा से ही मनुष्य संसाररूपी सागर से पार हो सकता है और सद्गुरु की प्राप्ति ही भवसागर से पार लगा सकती है।

पंजाबी संत अमरदास जी कहते हैं कि राम कहने से राम नहीं मिलते जब तक कि गुरुदेव की कृपा नहीं हो जाती।

राम-राम सब कोई कहैं,
कहिये राम न होइ॥
गुरु परसादी मनि बसै,
ता फल पावै कोइ॥

भक्त परशुराम के शब्दों में ईश्वर भक्ति भी बिना सद्गुरु की कृपा के नहीं मिलती।

सत गुरु बिना भक्ति नहिं सूझै।
भरम करम में जीव अरूझै॥
सत गुरु बैद कहे ज्यूं कीजै।
आज्ञा मेटि पाँव नहिं दीजै॥
राम नाम अमर जड़ी,
सत गुरु बैद सुजान।
जन्म मरण वेदना कटे,
पावे पद निरवान॥

भक्त परशुराम जी कहते हैं—श्री गुरुदेव की भक्ति में पग-पग पर यज्ञ होते हैं। पग-पग पर श्री गुरुदेव की राह में चलने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है।

सन्त तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस का प्रारम्भ श्री गुरुदेव जी की भक्ति से किया है। जिनकी चरण-रज को धारण कर ही भगवान राम की लीलाओं का दिग्दर्शन कराने में समर्थ हुये।

बन्दौं गुरु पद-पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू।
शमन सकल भवरुज परिवारू॥
श्री गुरु पद नख मणि गण ज्योती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥

सन्त तुलसीदास जी ने गुरुदेव जी को ही सर्व शक्तियों का भण्डार कहा है, जिनकी कृपा से सब प्रकार की विघ्न-बाधायें समाप्त हो जाती हैं और कठिन-से-कठिन कार्य भी सम्पन्न होते हैं। उनकी महिमा का वर्णन करते हुये सन्त तुलसीदास जी लिखते हैं—

बंदउँ गुरुपद कंज,
कृपा-सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज,
जासु वचन रविकर निकर॥
राखै गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता॥
गुरु बिन भव-निधि तरै न कोई।
जो बिरंचि शंकर सम होई॥

इस प्रकार भिन्न-भिन्न सन्तों ने गुरुदेव की महिमा का वर्णन किया है। जो भी सन्त, महात्मा, महापुरुष हुये हैं, सब गुरुदेव की कृपा से ही हुये हैं। जो श्री गुरुदेव की सच्चे मन-वचन-कर्म से सेवा करता है उसको परम-पद प्राप्त होता है।

गुरु-गीता में भगवान शिव ने गुरु-महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है:—

सप्त सागर पर्यन्तं
तीर्थ स्नानादि कैः फलम्।
गुरु पादोदकस्यापि
सहस्रांशेन दुर्लभम्॥

अर्थात् सात सागर पर्यन्त तीर्थ स्नानादि का फल गुरु के चरणोदक के हजारवें अंश के बराबर नहीं है, इसलिये गुरु का चरणोदक दुर्लभ है।

गुरोः कृपा प्रसादेन
ब्रह्माविष्णु महेश्वराः।
सामर्थ्यं तत्प्रसादेन
केवलं गुरु सेवया॥

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर गुरु की कृपा के प्रसाद से हुए हैं। केवल गुरु की सेवा करने से और गुरु के प्रसाद से उनको सामर्थ्य प्राप्त हुआ है।

यह गुरु सर्व देवतात्मक और मन्त्रमय है इस प्रकार से सब प्रयत्न से गुरु की आज्ञा शिर पर धारण करे। कल्याण को चाहना रखने वाला जन यदि गुरु की आज्ञा को मन से भी उलंघन नहीं करता वह गुरु-आज्ञा का पालक ज्ञान-सम्पत्ति को प्राप्त करता है। मनुष्य चलते समय, भोजन करते समय, सोते समय तथा दूसरों का व्यवहार करने में सब कार्य गुरु की आज्ञा से करने चाहिये।

गुरोर्गृहे समक्ष वा
न यथेष्टा सनो भवेत्।
गुरुर्देवो यतः साक्षा-
त्तद् गृहं देव मन्दिरम्॥

अर्थात् गुरु के घर या गुरु के सामने अपने यथेष्ट आसन पर न बैठे, गुरु साक्षात् देवता है, उनका घर देवमंदिर है। जिस प्रकार पापियों के संग या पाप से पतित हो जाता है इसी प्रकार आचार्य के संग से सब पाप का नाश होकर उसके धर्म फल का भागी होता है। जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से स्वर्ण का मैल त्यागा जाता है। जिस प्रकार गुरु के सम्पर्क से मनुष्य पापों को त्याग देता है। जैसे अग्नि के पास रखा हुआ घृत कुम्भ-लय को प्राप्त हो जाता है। आचार्य के संसर्ग से इसी प्रकार पाप नष्ट होता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे काठ को जला देती है। अतः सन्तुष्ट हुये गुरु शीघ्र ही पापों को नष्ट कर देते हैं। मन, वचन, कर्म से गुरु को क्रोधित न करना चाहिये।

कर्मणा मनसा वाचा,
सद्धिशा राधयेद् गुरुं।
दीर्घ दंडं नमस्कृत्य,
निर्लज्जो गुरु सन्निधौ॥

अर्थात् सच्चे भाव से कर्म से मन से और वाणी से गुरु की आराधना करे। लज्जा रहित गुरु के समीप लम्बे दण्ड के समान नमस्कार करे।

गुरु पाद प्रसादेन,
ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।

येनोद्भूत मिदं विश्वं ,
तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥
गुरोः पादोदकं पीत्वा ,
गुरो रुच्छिष्ट भोजनम् ।
गुरु मूर्तेः सदा ध्यानं ,
गुरु स्तोत्र सदा जपेत ॥

अर्थात् गुरु के चरणोदक को पीकर गुरु का बचा हुआ भोजन करे । गुरु-मूर्ति का सदा ध्यान करे, गुरु स्तोत्र को सदा जपे ।

गुरुमूर्ति स्मरेन्नित्यं ,
गुरोर्नाम सदा जपेत ।
गुरोराज्ञा प्रकुर्वीत ,
गुरोरन्यं न भावयेत ॥

अर्थात् गुरुमूर्ति का नित्य स्मरण करे, गुरु का नाम सदा जपे, गुरु की आज्ञा का पालन करे, गुरु के सिवाय अन्य की भावना न करे ।

भगवान शंकर कहते है कि गुरुदेव को कभी क्रोधित नहीं करना चाहिये उनके मन को हर समय प्रसन्न रखे ।

तस्य क्रोधेन दह्यंते ,
ह्यायुः श्री ज्ञान सत्क्रियाः ।
तत्क्रोध कारिणो ये ,
स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ॥

अर्थात् गुरु के उत्पन्न क्रोध से आयु श्री, ज्ञान, सत्क्रिया सभी नष्ट हो जाते है । जो गुरु को क्रोधित करनेवाले है उनके यज्ञ आदि निष्फल हो जाते है । क्योंकि श्री गुरुदेव जी का मन सदा-सर्वदा भक्तिमय होता है । इस लिए उनके मन में किसी प्रकार का उद्वेग पैदा करना साधक के लिए सब प्रकार से हानिप्रद है । और इसके अतिरिक्त जो भाग्यशाली जीव हर समय श्री गुरुदेव के प्रेम में निमग्न रहते है उनके लिए यह उक्ति सहज में ही चरितार्थ है ।

लाभस्तेषां जयस्तेषां ,
कुतस्तेषां पराजयः ।
येषां हृदयस्थो भगवान ,
मंगलायतनो हरि ॥

उन लोगों को हर समय लाभ है । उनकी हर स्थान पर जय ही जय है जिनके हृदय में मंगलायतन हरि का प्रकाश बना रहा करता है । श्री गुरुदेव जी साक्षात् हरि हैं यह शास्त्रोक्त है ।

गुरुरेव हरि साक्षान्नित्य ब्रवीच्छ्रुति ।

इसलिये परम श्रेय की इच्छा करने वाले साधक को चाहिए कि वह सब प्रकार से तन-मन न्योछावर करके श्री गुरुदेव की भक्ति करे इसी में सब प्रकार का भला है ।

जगत-जीवन के अधिष्ठाता

देवाधिदेव भगवान शंकर

[श्री पं० राममूर्ति चतुर्वेदी]

भोग और योग का अद्भुत समन्वय दिखायी पड़ता है भगवान शंकर में। स्वयम् आप भयंकर तपस्वी और योगीश्वर हैं, पर संसारी जीवों के लिए वे सम्पूर्ण सुख-भोग और ऐश्वर्यों के दाता हैं। त्यागपूर्वक जो भोग करता है, उसे वे आशुतोष, चरम भोग के भीतर से ही परम योग की भूमिका में अनायास पहुँचा देते हैं। जीव को उसके जीवत्व की सम्पूर्ण तृप्ति के भीतर से ही अक्षय शिवत्व की प्राप्ति करा देने का कीमिया है केवल भगवान शंकर के पास।

किसी कवि ने कहा है—

ये नाधि पीठ हठ संतत घृष्टि-
निर्यत्तिर्यक्किणा जगति कस्य न भाल-
पाली दैवानधीतनवदिव्य शुभाक्षराली-।
न्यासेच्छया निहितकाकपदेव चक्रे॥

विधाता सबके ललाट पर होनहार शुभ-अशुभ लिख देते हैं और जो लिखते हैं उतना ही होता है। परन्तु शिव के भक्तों के विषय में ऐसा नहीं होता। प्रतिदिन शिव के चरणारविन्दों में प्रणाम करने से ललाट पर घिसते एक तिरछा सा काला दाग पड़ जाता है। काक पद के समान, वे काक पद इस कारण बना देते हैं कि विधाता ने जो अक्षर न लिखा हो उसे आकर लिख जायें। जो कुछ भाग्य में त्रुटि हो उसकी पूर्ति कर जायें।"

हमारे देवताओं में भगवान शंकर ही एक ऐसे देवता हैं जो दूसरों की अपेक्षा बड़े भोले-भाले माने जाते हैं। जिसने कातर होकर पुकारा, दौड़ पड़े हैं उसका कष्ट हरने। चाहे वह व्यक्ति कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो। कितना ही अभागा क्यों न हो। वे दीनों की पुकार सुनकर स्थिर नहीं रह सकते, उन्हें प्रसन्न होते देर नहीं लगती, वरदान देते विलम्ब नहीं होता। ललाट में लिखी हुई जगत्पिता की भाग्य रेखा को भले ही पुनः बदलना पड़े पर आर्त भक्त की पुकार कैसे निष्फल जा सकती है। अपनी उदारता के कारण ही वे सब से अधिक लोकप्रिय हैं।

श्री मद्भागवत में एक स्थान पर आया है कि (२८ वाँ अध्याय) भगवान शंकर ने समस्त भोगों का त्याग कर रखा है, परन्तु देखा जाता है कि देवता असुर अथवा मनुष्य जो भी उनकी उपासना करते हैं प्रायः धनी और भोग-सम्पन्न हो जाते हैं। भगवान विष्णु लक्ष्मी-पति हैं परन्तु उनकी उपासना

करने वाले प्राय भोग सम्पन्न नहीं होते दोनों प्रभु त्याग और भोग की दृष्टि से एक दूसरे के विपरीत हैं। संसारी को धन चाहिये-भोग चाहिए और त्याग चाहिए। यह सब कुछ उसे शिव से ही मिलता है। कारण शिव के निकट बुरा कुछ भी नहीं-बुराई कोई नहीं, यदि है तो उसका महत्व नहीं के बराबर है क्योंकि वे स्वयं कल्याण स्वरूप हैं।

सृष्टि पर एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक चले आइये हर स्थान पर आपको शिव-लिंग किसी न किसी रूप में मिलेगा। अपने देश की तो बात ही छोड़िये। यहाँ तो शिव प्राण स्वरूप प्राणी-प्राणी में रम रहे हैं। व्यक्ति में, समष्टि में शिव मानवता के प्रतीक है।

सुर, नर, मुनि यहाँ तक कि नारायण भी उनके निश्छल स्वभाव, उनकी दानशीलता, उनकी भक्ति के वशीभूत रहते हैं—'शिवद्रोही मम दास कहावै, सो नर मोहि सपने नहि भावै'—तुलसी

भस्मासुर को वरदान दे दिया। पड़ गया वह उन्हीं के पीछे और बेचारे भागे अन्त में भगवान ने अपनी राजनीति से उसका वध किया। जितने देवता हैं सबके अपने अपने लोक, सबकी अपनी-अपनी प्रतिष्ठा, सबका अपना-अपना वैभव सभी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये सुन्दर देवियों और सहचरों से घिरे सबका निवास स्थान नाना प्रकार की विलास सामग्रियों से परिपूर्ण मानव और मानव की बुद्धि से परे। किन्तु इस बैरागी का अपना लोक कैलाश बीहड़ वन बर्फ से ढका, मृत्युलोक में संसारियों के निकट साथी सेवक, भूत-प्रेत, बैताल, वाहन बैल, शरीर पर वस्त्रों के नाम पर मृगछाला, अंग में भस्म रमाये निष्काम निर्विकार पड़े हैं। शिलाखण्ड पर अपने लिए कुछ नहीं चाहिये उन्हें। अपने लिए कुछ नहीं उनके पास। यदि कुछ धन सम्पत्ति परिवार के नाम पर है तो एक डमरू एक त्रिशूल और माता पार्वती, माला सर्पों की त्रिलोक की व्याधियाँ, त्रिलोक का भय, त्रिलोक की बुराइयाँ त्रिलोक के विष को अपने में लिप्त किये हुए निर्लिप्त। लिप्त हैं महादेव अपनी राम-धुन में पूजित हैं अघोरी त्रिलोक से।

देवताओं द्वारा पूजित, राक्षसों का भी हितैषी, मानवों का आराध्य, कोई भेद-भाव नहीं उनके यहाँ। कोई ऊँच-नीच नहीं उनके निकट। कोई आडम्बर नहीं उनकी पूजा में। उनके भक्तों को कुछ भी संग्रह नहीं करना पड़ना। चन्दन की लकड़ी यदि मिल गयी तो ठीक नहीं जल और बेल-पत्र, यदि बेल पत्र का भी अभाव रहा तो जल ही सही, पुष्प जंगलों में बहुतायत से पाये जाते हैं और वे पुष्प जिन्हें दूसरे देवता पसन्द ही नहीं करते मदार के धतूरे के। प्रसाद का प्रश्न ही नहीं उठता। लगे हैं अखण्ड समाधि में। कुछ नहीं चाहिए, उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता भी नहीं भूतनाथ को! यदि आवश्यकता है तो लोक-कल्याण की। संसार-सागर के भंवर में फँसे हुए कोटि-कोटि मानव के कल्याण की।

श्रद्धा और विश्वास के रूप में दोनों प्राणी (शिव-पार्वती) जीव, श्रद्धा और

विश्वास पर ही संसार में सब कुछ कर पाता है।

भवानीशंकरौ वन्दे
श्रद्धाविश्वास रूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति
सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।

साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या सिद्ध लोग भी जिसकी कृपा के बिना ईश्वर को नहीं देख सकते हैं-भगवान भोलेनाथ की कृपा के बिना भगवद्प्राप्ति नहीं हो सकती। उनकी ही शरण में जाकर मनुष्य चाहे कैसी भी वृत्ति का कैसे भी रूप का क्यों न हो मुक्त हो सकता है।

यमाश्रितो हि वक्रोऽपि
चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।

उनके ही आश्रय में रहकर टेढ़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है। औरों की अपेक्षा सब काम निराले। विवाह करने गये दुल्हा बनकर हिमाचल के घर सभी देवता अपने साज-बाज दलबल में किन्तु दूल्हा अपनी वही प्रतिदिन की गति-वही बैल, वही सेवक, वही वेश।

कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू
बिनु पद रज कोउ बिनु पद बाहू।
विपुल नयन कोउ नयन बिहीना
रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना॥

ये थे उनके अपने परिवार के लोग। कहाँ तक वर्णन किया जाय जन-मन के निकट रहने वाले इस प्रकार संसार के प्राणियों को मुक्ति का मार्ग दिखानेवाले का संसारियों पर जब-जब अत्याचार हुए और देवताओं की अपेक्षा शिव सबसे अधिक झेलते आ रहे हैं। मानव पर उनका कोई कोप नहीं सोमनाथ में उनकी प्रतिमा खण्डखण्ड की गयी, काशी में विश्वनाथ रूप पर उनके ऊपर प्रहार हुआ किन्तु वे उसी तरह निश्चल निर्विकार रहे। क्योंकि मानव पर क्रोध करना उनके स्वभाव के विरुद्ध है। वे जानते हैं कि ये निरीह हैं असहाय हैं —बालक हैं— क्रोध उन्हें भी आता है। पर कब? जब सारा संसार पथभ्रष्ट हो जाता है। यह क्रोध भी निराला ही है ढंग भी निराले ढंग से। डमरू बजाते हुए एक हाथ में त्रिशूल लिए हुए प्रारम्भ कर देते हैं ताण्डव नृत्य खुल जाता है तीसरा नेत्र बस प्रलय उपस्थित हो जाता है।

केवल मृत्युलोक ही नहीं त्रिलोक का कायाकल्प हो जाता है और आश्चर्य की बात तो यह होती है उनके ताण्डव में कि भगवती पार्वती अपने लास्य नृत्य के साथ उनको सहयोग देती है। रौद्र में शृंगार का मिश्रण। और यहा रौद्र रूप कलाकारों-नृत्यकारों के लिए वरदान बन जाता है। संसार में नवयुग का प्रारम्भ करता है। साहित्य सृजन में सहयोग देता है। नयी चेतना के साथ नये-नये अंकुर धरती से निकलते हैं जीव मात्र के पोषण के लिए। तात्पर्य यह है कि उनकी प्रसन्नता में कल्याण होता ही है क्रोध से भी

कल्याण ही होता है। इसी कारण वे महादेव कहे जाते हैं। सुख में हर-हर महादेव शब्द कहकर लोग संतोष पाते हैं दुख में धैर्य,क्रान्ति में शान्ति। शिव का भाव ही कल्याणकारी है।

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।

मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वः सम्भवं शंकरं,

वन्दे ब्रह्मकुलम् कलंकशमनम् श्री राम भूपप्रियम्॥

धर्मरूपी वृक्ष के मूल विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देने वाले पूर्णचन्द्र, वैराग्य रूपी कमल को विकसित करनेवाले सूर्य, पापरूपी घोर अन्धकार को निश्चय ही मिटाने वाले, तीनों तापों को हरने वाले, मोहरूपी बादलों के समूह को छिन्न-भिन्न करने की विधि में आकाश से उत्पन्न पवन स्वरूप, ब्रह्माजी के वंशज तथा कलंक नाशक महाराज रामचन्द्र के प्रिय श्री शंकरजी को मैं वन्दना करता हूं।

मानव भोग भी चाहता है, त्याग भी चाहता है और मुक्ति भी। संसार में भोग, त्याग और परलोक में मुक्ति सब उसे मिलती है शिव से, केवल शिव से। स्त्री-पुरुष समान रूपसे उन्हें चाहते हैं। इसीलिए तो उनका एक रूप है अर्धनारीश्वर!

वर्तमान युगमें ऊँच-नीच,भेद-भाव,धनी-निर्धन इत्यादि व्याधियों से मानव पीड़ित है। इसका एक मात्र कारण है वह शिव को भूल गया है। यदि वह एकाग्रमन से शिव के स्वरूप को समझे। आराधना करे तो दैहिक, दैविक,भौतिक सभी तापों से मुक्ति पा सकता है। रामराज्य की सुन्दर कल्पना सबसे पहले शिव ने की। प्रचार, प्रसार भी शिव के ही द्वारा संसार में हुआ।

चिदानंद, सुखधाम सिव,
बिगत, मोह, मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि
सकल लोक अभिराम॥

यदि आप मन को शीघ्र शान्त करना चाहते हैं तो कुछ दिन एकान्त में रहकर चन्द्रमा में त्राटक करें। इस त्राटक से मन बहुत ही शीघ्र रुका करता है क्योंकि चन्द्रमा और मन का बाप-बेटे का सम्बन्ध है। चन्द्रमा से ही तो मन जन्मा है। 'चन्द्रमा मनसो प्रजायतः।

—महात्मा ॐ

श्रीकृष्ण का शक्तिपात [पृष्ठ ८ का शेषांश]

को आश्वासन देकर एवं अपना सौम्य मानवीय रूप दिखाकर सान्त्वना दी और उपसंहार में एक रहस्यमय उपदेश किया—वह दो श्लोकों के अन्दर जगदात्मा ने अपने भावों का स्पष्ट उपदेश करके समझाया है :—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य
अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन
प्रवेष्टुं च परंतप ॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो
मद्भक्तः संगवर्जितः ॥
निर्वैरः सर्वभूतेषु
यः स मामेति पाण्डव ॥

भगवान ने कहा है अर्जुन अनन्य भक्ति के द्वारा मैं इस प्रकार जाना जा सकता हूं, देखा जा सकता हूं, प्रवेश किया जा सकता हूं इसलिये तू मेरी भक्ति कर। संगरहित हो जा, सब कर्म मेरे लिये कर। प्राणी मात्र से निर्वैर होकर ही मेरे को प्राप्त हो सकेगा।

जगदात्मा ने ११ वें अध्याय के उपसंहार के इस व्याख्यानमें अर्जुन को अपने क्रियाविधान का पूरा रहस्य समझा दिया। जिससे बिल्कुल एकात्मभाव को प्राप्त हो जाय और समाधि-सिद्ध हो जाय। यह था उनका 'कर्त्तुंम कर्तुंमन्यथा कर्त्तुंम' का सामर्थ्य इसी अनुग्रह को पाकर मनुष्य कृतकृत्य हुआ करता है। जब तक मनुष्य इस प्रकार का अनुग्रह-भाजन नहीं बन जाता तब तक उसको प्रयत्न में लगा रहना चाहिये। जो लोग ईश्वर को सर्व व्यापक समझकर उसकी उपासना करते हैं और पूर्णरूपेण प्रयत्नशील रहते हैं वे अवश्य ही अपने परम लक्ष्य को प्राप्त हो जाया करते हैं।

—×●×—

उद्यमः साहसं धैर्यं, बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्तन्ते, तत्र दैवं सहायकृत् ॥

अर्थ :—प्रयत्न, हिम्मत, धीरज, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम ये छः जहां रहते हैं वहां भाग्य भी सहायता करता है।

आलसस्य कुतो विद्या, अविद्यस्य कुतो धनम् ।
अधनस्य कुतो मित्रं, अमित्रस्य कुतः सुखम् ॥

अर्थ :—आलसी को विद्या कहाँ से आयेगी, मूर्ख को धन कहाँ से प्राप्त होगा, निर्धन के मित्र कैसे होंगे और जिसके मित्र नहीं उसे सुख कहाँ से मिलेगा ?

—सूक्ति-सुधा

अपनी-अपनी बात :—

मेरे व मेरी सहधर्मिणी के कुछ— ध्यानानुभव

[श्री दुष्यन्तसिंहजी सीसोदिया जेलर]
जिला जेल, बुलन्दशहर

मेरा श्री सद्गुरुदेव जी के चरण-कमलों को प्राप्त होने का श्रेय मेरे लघु भ्राता धर्मेन्द्रसिंह को है। मेरा भाई दतिया (म० प्र०) में अध्यापन का कार्य कर रहा है, श्री गुरुदेव जी का दतिया में योग-प्रचार कार्य-काम श्री भाई शारदाचरण सक्सेना जी के निवास-स्थान पर प्रति वर्ष चलता है। वहीं से भाई को श्री गुरुदेवजी के चरण-शरण में आने का अवसर मिला, मैं उस समय जिला जेल बदायूं में जेलर था। भाई धर्मेन्द्र ने मुझे श्री गुरुदेव जी के विषय में बहुत-सी अद्भुत बातें बताई थीं मुझे सब बातें आश्चर्य से भरी हुई मिथ्या सी प्रतीत हुईं कि इस कलिकाल के समय में इस प्रकार के पूर्ण सिद्ध गुरुदेव क्या कहीं मिल सकते हैं। धर्मेन्द्र के अधिक प्रशंसा करने पर मन में उत्कंठा का उदय हो जाना स्वाभाविक होगया। मेरी सहधर्मिणी शीला देवी ने आग्रह किया कि श्री गुरुदेव के दर्शन करने चलें। उस समय श्री गुरुदेव ऋषिकेश आश्रम में निवास कर रहे थे। बड़े ही साहस के साथ श्री गुरुदेव जी को ऋषिकेश के पते से पत्र लिखा। और पत्र का उत्तर शीघ्र पाकर अपने को धन्य समझा प्रसन्नता में मन उछलने लगा। पत्र में बहुत ही अपनापन था।

इसी बीच में मेरा तबादला लखनऊ के लिये हो गया था किन्तु बदायूं की जनता ने प्रयत्न करके मेरा तबादला रुकवा लिया जिससे आई० जी० मुझसे बहुत रुष्ट हो गये। हृदय में लगन थी कि जल्दी-से-जल्दी श्री गुरुदेव की शरण में जाऊँ और दीक्षा-ग्रहण करूँ। किन्तु डर था कि कहीं मेरा तबादला किसी ऐसे स्थान पर न कर दिया जाय कि मैं श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों का दर्शन शीघ्र प्राप्त न कर सकूं। मैंने हृदय से श्री गुरुदेव के चरण-कमलों का स्मरण किया और कहा कि गुरुदेव यदि आपने मुझे अपना बच्चा स्वीकार किया है तो मेरा तबादला अपने पास ही करा दें। मेरे आन्तरिक हृदय की पुकार भी श्री गुरुदेव जी तक पहुंची और मेरा तबादला आगरा जिला कारागार के लिये हो गया। इस प्रकार की अद्भुत अनहोनी घटना को देखकर सभी कर्मचारी व स्वयं मैं आश्चर्य में पड़ गये कि आई० जी० के नाराज होने पर भी मेरा तबादला आगरा क्यों। वास्तव में यह सब श्री गुरुदेव जी की महान शक्ति थी। जब मैं आगरा आगया तो मन को धैर्य न रहा। सोचा जल्दी-से-जल्दी

सवाई श्री सिद्ध गुफा चलकर श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों को प्राप्त करूँ व दीक्षा-ग्रहण करूँ। इस प्रकार आश्रम जाकर मैंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमादेवी के साथ सपरिवार दीक्षा-ग्रहण की। उसी दिन से मेरे घर में प्रभुजी के चमत्कारों का स्रोत आरम्भ हो गया।

दीक्षा लेने के पश्चात् प्रथम बार होली के त्यौहार पर हम सब की हार्दिक इच्छा हुई कि पूज्य श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों में चलकर ही होली मनावें। उन दिनों श्री गुरुदेव बनारस विश्व विद्यालय में योग-प्रचार कार्य-क्रम कर रहे थे। हमें श्री गुरुदेव जी के आश्रम में आने के निश्चित दिन का पता नहीं था। विचार हुआ कि किसी सिपाही को भेज कर श्री गुरुदेव जी के निश्चित दिन का पता करायें। लेकिन उसी शाम को आरती के पश्चात् जब मेरी पत्नी ध्यान में बैठी तो श्री गुरुदेव जी ने ध्यान में ही कहा बेटी तुम जो किसी सिपाही को भेजने का विचार कर रही हो सो न भेजना, हम फलां दिन आश्रम पहुंच रहे हैं। हमने आश्रम जाने के लिये कार का प्रबन्ध कर लिया था। कार सुबह घर पर आ गई थी। सोचा कि आरती करके चलें। आरती करते-करते मेरी पत्नी ध्यानस्थ हो गई। ध्यान में ही श्री गुरुदेव ने कहा कि बेटी मैं आश्रम आ गया हूँ और तू घर पर ही पूजा कर रही है। पूजा बन्द कर और आश्रम आ, इतनी बातें सुनते ही मेरी पत्नी उठी और कहा चलो पूज्य गुरुदेव आश्रम आ गये हैं। वह मुझे बुला रहे हैं हम लोगों ने शीघ्र ही बाहर खड़ी कार में सामान रखा और आश्रम जा पहुँचे। हमने देखा कि श्री गुरुदेव जी अपने कमरे के सामने खड़े हैं ऐसा प्रतीत होता था कि मानो गुरुदेव जी हमारी प्रतीक्षा कर रहे हों। हम सब ने श्री गुरुदेव जी के पवित्र चरण-कमलों का प्राप्त कर अपने को धन्य किया। मेरे पहुँचते ही श्री गुरुदेव ने हँसकर कहा—लल्ला तुम आ गये, हमारे आने का कैसे पता लग गया था? हमने कहा—हे गुरुदेव आप अन्तर्यामी हैं आपने ही तो ध्यान में बताया कि हम आश्रम पर आगये हैं। फिर आप पूछ रहे हैं। लल्ला तुम्हें कैसे पता चला। हे प्रभो आपकी माया आप ही जानें, दो-तीन दिन तक श्री गुरुदेव जी के चरण-कमलों में रहने का सौभाग्य मिला। अधिक समय तक आश्रम नहीं रुक सकते थे क्योंकि ३ दिन का ही अवकाश था उसके बाद हम वापस आगरा आ गये।

इस प्रकार मेरी धर्मपत्नी का ध्यानाभ्यास चलता रहा। एक दिन मेरी पत्नी ने ध्यान में श्रीप्रभुजी से प्रार्थना की कि—हे अखिल लोक पावन श्रीप्रभुजी ! मुझे स्थूलरूप से दर्शन दें तो मैं आपको जानूं। उसी दिन शाम को ध्यान में श्रीप्रभुजी ने बताया कि आज से १५ वें दिन तुझे रात्रि को ११ या १२ बजे दर्शन देंगे।' हम इस बात को भूल गये थे। ठीक १५ वें दिन रात्रि को मैं व मेरी धर्मपत्नी सब कमरा बन्द करके व बिजली

बन्द करके सो गये थे इससे पहिले हम बिजली जलाकर सोते थे किन्तु उस दिन बिजली बन्द करके और कमरा बन्द करके सो गये । ठीक रात्रि के ११ बजे कमरे में बिजली से भी तेज प्रकाश होने लगा । कमरा बन्द था बिजली भी बन्द थी । हमें उस दिन का ज्ञान भी नहीं था । हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्री आनन्दकंद प्रभु जी कमरे में प्रगट हो गये हैं । मेरी पत्नी ने श्री प्रभुजी के स्थूल शरीर के साक्षात् दर्शन किये । मेरी पत्नी श्री प्रभुजी को पहचान न सकी क्योंकि इससे पहिले श्री प्रभुजी के चित्र के ही दर्शन उसने किये थे । आश्चर्य में पड़ गई कि कौन महात्मा है । कुछ क्षण बाद स्वयं श्री प्रभुजी ने कहा—बेटी तुमने पहचाना नहीं, मैं वही प्रभु रामलाल हूं जिसकी तू पूजा करती है— इतना सुनते ही मेरी पत्नीके हर्ष का ठिकाना न रहा, मेरा धन्य भाग्य था कि मेरे घर में स्वयं भगवान ने दर्शन दिये हैं । उसके बाद मेरी पत्नीने श्री प्रभुजी की आरती की, इसके बाद श्री प्रभुजी अन्तर्ध्यान हो गये ।

एक दिन मेरी लड़की आभा पूजा के कमरे में दिन के लगभग १ बजे सिलाई की मशीन चला रही थी वह क्या देखती है कि एक छोटा बच्चा है, उसके दाढ़ी है, हाथ में फूलों की टोकरी लेकर श्री प्रभुजी के चित्र की ओर जा रहा है वह भय के मारे कमरे से भागकर अपनी माँ की गोद में गिर पड़ी और बोली कि मम्मी उस कमरे में कोई दाढ़ीवाला लड़का घूम रहा है, हाथों में फूलों की टोकरी है । शामको पूजा करते समय श्री प्रभुजी ने मेरी स्त्री को ध्यान में बताया कि वह तो मैं था और यह बताने आया था कि तुम्हारा प्रसाद बिल्ली झूठा कर गई है । उसे मत खाना और गाय को खिला देना ।

× × ×

एक दिन शाम को मेरी जेल से कैदी भागा । उस समय मेरी पत्नी श्री प्रभु जी की पूजा कर रही थी । मेरी लड़की आभा ने आकर कहा मम्मी जेल से कैदी भाग गया, उसी समय मेरी पत्नी घबराई और चीख निकली कि हे प्रभो यह क्या हुआ, इसके बाद ही उसकी ध्यान स्थिति हो गई और ध्यानावस्था में ही कहा कि 'अपने पापा से कह दो कैदी भाग कर बाहर नहीं जा सकता ।' श्री अखिललोकपावन प्रभुजी व दुर्गामाता जेल को घेरे हुए हैं जेल को सर्पों ने घेर लिया है । श्री प्रभु जी त्रिशूल लिये हैं । और दुर्गामाता चक्र लिये हैं कैदी दीवाल पर चढ़ता है व श्री प्रभुजी उसे गिरा देते हैं चढ़ने नहीं देते । वह तीन-चार बार चढ़ा और गिरा । तुम्हारे पापा ने ५) का प्रसाद बाँटने को कहा है उनसे कह दो कि कैदी दूसरी दीवालके सहारे खड़ा है । जब तलाश किया गया तो एक सिपाही ने बताया कि कैदी वहीं मिला जहां बताया था । जब कैदी से पूछा गया तो सब उसने वेही बातें बताईं जो मेरी स्त्री ने बताई थीं ।

एक बार मेरी पत्नी ने श्री गुरुदेव जी से प्रार्थना कि हे गुरुदेव जी हम लड़की की शादी

के लिये लड़का देखते-देखते तंग आ गये हैं अब आप कृपा करें, जहां भी जाते हैं अधिक धन मांगते हैं इस पर श्री गुरुदेव जी ने प्रसन्न होकर मुझे पुष्प प्रसाद दिया कि तुम जिस लड़के को चाहोगे वही मिलेगा। लड़का घर बैठे ही मिल गया। हमारे एक मित्र ने बताया कि एक लड़का है चलो आज उसके पिता से बात करलें, जब उसके पिता से बातें हुईं तो ऐसा मालूम हुआ कि वह पहले से ही तैयार था। रुपये की मांग की। तब फिर घबराकर गुरुदेव को पत्र लिखा, इस पर श्री गुरुदेव का पत्र आया कि तुम फिर लड़के वालों के पास जाओ। जब लड़के वालों के यहां गये तो उन्होंने रुपये पैसे का प्रश्न ही नहीं किया। इसी समय ध्यान में श्री प्रभुजी ने बतलाया कि तेरे पतिदेव का तबादला बुलन्दशहर को हो जावेगा किन्तु शादी तुम यहीं से करोगी। जैसा श्री प्रभुजी ने कहा वही हुआ। मैं ६ फरवरी को बुलन्दशहर चार्ज लेने गया। २२ को शादी थी। पुनः आगरा आया और शादी सम्पन्न की। शादी के समय वर्षा हो रही थी। मुझे बड़ी घबराहट हुई। इस पर मेरी पत्नी ने ध्यान में प्रार्थना की कि हे प्रभो वर्षा में शादी का कार्य कैसे होगा। तो श्री प्रभु जी ने कहा तू चिन्ता न कर, शादी से दो दिन पानी नहीं बरसेगा यह बात मेरी पत्नी ने सब को बता दी और यह कहा कि बारात विदा होते ही पानी पड़ेगा। वही हुआ। शादी से दो दिन पहिले ही वर्षा बन्द हो गई। बारात विदा होते ही वर्षा शुरू होगई। बारात आने पर मेरी पत्नी को चिन्ता हुई कि इतने आदमियों का खाना किस प्रकार खिलाया जावेगा क्यों तादादसे ज्यादा बाराती थे। कैसे खर्च पूरा होगा। श्री प्रभु जी ने ध्यान में बताया कि देवी चिन्ता क्यों करती है। तू एक पाव घी का दीपक मेरे चित्र के आगे जलादे सब खर्च पूरा होगा। वही हुआ सब कार्य सम्पन्न हुए किसी प्रकार का विघ्न नहीं आया तादाद से ज्यादा भोजन बच भी गया। खर्च भी बहुत कम हुआ।

आगरा जेल के एक सहायक जेलर श्री इन्द्रदेव शर्मा की धर्मपत्नी ने मेरी पत्नी से आगरा में कांग्रेस सीट से चुनाव लड़ रहे उम्मेदवार के चुनाव-परिणाम जानने की इच्छा की। चुनाव होने से १५ दिन पहिले ही मेरी पत्नी ने बता दिया कि श्री गुरुदेव जी ने बताया है कि यहां कांग्रेसी उम्मेदवार चुनाव जीतेगा किन्तु अधिक वोटों से नहीं। जब १५ दिन बाद परिणाम मालूम हुआ तो वही हुआ।

मेरे साथ एक डिप्टी जेलर श्री सालिगराम शर्मा के तबादले का समाचार मेरी पत्नी को श्री गुरुदेव जी ने पहले ही बता दिया था। इसकी पुष्टि उसी समय टेलीफून द्वारा हो गई। जिस दिन का बताया उसी दिन तबादले का आदेश मिला।

× × ×

बुलन्दशहर आने के बाद मैं और धर्मपत्नी श्री राजराजेश्वरनाथ जी के मंदिर दर्शन करने गये। मंदिर प्राचीन है। पुजारी ने मंदिरमें घुसने नहीं दिया, बहुत कहा किन्तु

नहीं माना। इस बात को सुनकर मेरी पत्नी वहीं ध्यानस्थ हो गई और श्री आनन्द-कंद प्रभुजी ने शिव रूप में दर्शन दिये और कहा बेटी इस पुजारी से कहो इसको मंदिर में तीसरा वर्ष है यदि दर्शन नहीं करने देगा तो इसका अनिष्ट हो जायेगा। जब यह बात मेरी पत्नी ने पुजारी को बताई तो वह घबरा गया और मंदिर उसी समय खोल दिया और आदर पूर्वक दर्शन कराये।

कुछ दिन के बाद बुलन्दशहर में अपने निवास स्थान पर श्री प्रभु कीर्तन का आयोजन किया। कीर्तन में लगभग २०० स्त्री-पुरुष थे। मेरी पत्नी शीलादेवी ध्यान में बैठी थी उसी समय बड़े जोर के बादल उठे और वर्षा होने लगी। कीर्तन वाले उठ-उठ कर कमरों में भागने लगे उसी समय श्री प्रभु जी ने ध्यान में मेरी पत्नी से कहा बेटी तेरे कीर्तन में बाधा पड़ रही है तू सिद्ध गुफा की रज लेकर वायु मंडल में फैला दे। वर्षा बन्द हो जायेगी। जब तक तेरा कीर्तन-सत्संग चलेगा वर्षा नहीं होगी उसी समय मेरी पत्नी ध्यान से उठकर चली तो बहिनों ने पूछा—कहाँ जा रही हो। तो मेरी पत्नी ने कहा कि मेरे प्रभु की आज्ञा हुई है कि श्री सिद्धगुफा की रज को वायु-मंडल में फैला दे वर्षा बन्द हो जायेगी। इस प्रकार कीर्तन रात्रि के २ बजे तक चलता रहा। उसके बाद कीर्तन समाप्त कर सब अपने-अपने घर चले गये तो बड़ी जोर से वर्षा हुई।

इस प्रकार आप लोगों के समक्ष श्री गुरुदेवजी की लीला के कुछ अंश का वर्णन किया है। उनके शिष्यों के साथ नित्य प्रति इस प्रकार की घटनायें घटित हुआ करती हैं। श्री गुरुदेव की महान शक्ति का वर्णन मेरे जैसे तुच्छ प्राणी के लिये उसी प्रकार है जिस प्रकार सूर्य को दीपक दिखाना। मैं और मेरा परिवार इन गुरुदेव के चरण-कमलों को पाकर धन्य हुआ है।

—×०×—

सद्गुरु से सीखिए

मनुष्य की दृष्टि की यह आदत-सी पड़ गई है कि वह उसी का अस्तित्व मानती है जो उसे दिखाई पड़ता है, और जो वस्तु गुप्त होती है उसे वह गोप्य कहता है। पर जो कुछ प्रकट है, उसे असार समझना चाहिए, और जो गुप्त है, उसे सार समझना चाहिए। यह बात सद्गुरु से ही अच्छी तरह समझी जा सकती है।

—समर्थ रामदास

प्रेम-सागर भटियाना

[श्री आनन्दस्वरूप सिंघल]
हापुड़ (मेरठ)

मैंने श्री सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज की महत्ता के विषय में बहुत समय पहिले से ही सुन रखा था। अनेक व्यक्तियों ने उनके महान् योग ऐश्वर्य के बारे में चर्चा की थी अतः मन में उत्कट् अभिलाषा थी कि ऐसे महान योगिराज के दर्शन जल्दी-से-जल्दी किस प्रकार प्राप्त करूँ। मेरे भाग्य का शुभ समय आया और मुझे पता चला कि योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज भटियाना आये हुए हैं। मुझे ९ जुलाई को पता लगा और साथ ही यह भी पता लगा कि श्री गुरुदेव ११ तारीख तक ही भटियाना रहेंगे। मन को असीमित क्लेश हुआ किन्तु अपना अहोभाग्य समझकर कि चलो—दो दिन का समय तो मिला मैं भटियाना के लिए छुट्टी लेकर चल दिया।

× × ×

भटियाना में श्री गुरुदेवजी की अलौकिक शक्ति का जो स्रोत बह रहा है उसका कुछ ज्ञान मुझे भी था। वहाँ की नित्य प्रति की आश्चर्य युक्त घटनायें वहाँ के मनुष्यों से सुन रखी थीं। इसीलिए अपने अपूर्व सौभाग्य को समझ मन बड़ा प्रसन्न था कि आज उन लीलाधारी योगाधिपति श्री गुरुदेव जी की लीलाओं को साक्षात् रूप में देख सकूँगा। और उनके दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाऊँगा।

मैं १० जुलाई को हापुड़ से चलकर शाम के लगभग ३॥ बजे भटियाना पहुँचा। उस समय स्त्री-सत्संग चल रहा था। एक ओर संगीत चल रहा था, दूसरी ओर कई लड़की और स्त्री (महिला) बेहोशी की अवस्था में पड़ी थीं। कोई भावावेश में कृष्ण का अभिनय कर रही थी तो कोई अन्य प्रकार का, मेरे लिये ये सब बातें आश्चर्य से भरी हुई थीं। इन सबका रहस्य जानने की मुझे लालसा हुई। इस प्रकार मैं श्री गुरुदेव के पास पहुँचा, उनके चरण-स्पर्श किये व आशीर्वाद पाया। मेरी वर्षों की लालसा आज पूर्ण हुई। जैसा मैंने सुना वही पाया, जल्दी के कारण मेरी इच्छा चलने की हुई। क्योंकि मैं एक दिन का अवकाश लेकर आया था यद्यपि मन नहीं चाहता था कि जाऊँ किन्तु जाना आवश्यक था। मैंने जब जाने की आज्ञा माँगी तो श्री गुरुदेव ने कहा—एक आओ—जब ये शब्द मेरे कानों में पड़े तो मैं निहाल हो गया। मैंने समझ लिया कि अब मेरे भाग्य का उदय होनेवाला है। मैं पुनः दूसरे दिन लौटने का वचन दे आज्ञा लेकर हापुड़ चला आया। मैं हापुड़ आ गया किन्तु आँखों के सामने सब भटियानाके ही दृश्य थे।

अगले दिन ११ जुलाई को जब मैं भटियाना पहुँचा तो मैंने देखा परम पूज्य गुरुदेव जी अपने आसन पर विराजमान हैं। महिला

सत्संग आज भी चल रहा था। मैं श्री गुरुदेव जी को प्रणाम करके पुरुष समाज की ओर जाकर बैठ गया। मुझे कुछ ही क्षण हुए कि क्या देखता हूं कि ३-४ बालिकायें जिनकी आयु लगभग ८-९ वर्ष की थी वे भावावेश में कृष्ण-रूप धारण किये हुए खड़ी हुई हैं, एक वंशी बजा रही है दूसरी गोवर्धन अंगुली पर उठाये हुए थी तीसरी व चौथी नृत्य में लवलीन थी। इस प्रकार एक अभूतपूर्व कृष्णमय वातावरण ही बना हुआ था। कीर्तन की ध्वनि जैसे जैसे तेज होती जाती उसी प्रकार सब में भावावेश बढ़ता ही चला जाता था कुछ क्षण बाद क्या देखता हूं कि कई स्त्रियों ने रोना आरम्भ कर दिया और थोड़ी ही देर में वे सब ध्यानस्थ हो गईं। सत्संग के समापन से पहिले १५-१६ कन्यायें जो पहली बार ही सत्संग में आई थीं और जो भावावेश में ध्यानस्थ थीं उनको श्री गुरुदेव जी द्वारा उठाया गया किन्तु उनका ध्यान ही नहीं खुला, इन सब के भी विभिन्न रूप थे। कोई मक्खन खा रही थी, किसी ने सुदर्शन चक्र धारण कर रखा है कोई मुरली बजा रही थी। कई मूर्छित अवस्था में गुरुदेव के चरण-चिन्तन में लीन थीं इस प्रकार देखकर पहिले मुझे आश्चर्य हुआ किन्तु यह सब सत्य था इसमें कोई बनावट नहीं थी, श्री गुरुदेव जी ने उन सब को स्थिति को बताया। आज के युग में इस प्रकारके गुरुदेवका पाजाना दुर्लभ ही है।

मैंने तो इस प्रकार के गुरुदेव को पाकर अपने को धन्य समझा और वे लोग भी धन्य हैं जिन्हें ऐसे गुरुदेव मिले हैं।

* * *

“ध्यान के लिए”

आध्यात्मिक महत्त्व की अन्यान्य अनेक वस्तुओं की ही भांति, ध्यान का पूरा लाभ, उसका पूरा अभ्यास करने पर ही, प्राप्त होता है, न कि पहले से उसके महत्त्व को समझने का प्रयत्न करने से।

किसी भी प्रकार के ध्यान में, सच्ची सफलता प्राप्त करने के लिए, उसकी समस्त सम्भाव्यताओं का शोध करने का निश्चय करके, उसका अभ्यास करना आवश्यक है। पहले से ही, मन में सीमित अपेक्षाएं गढ़ कर उसे ध्यान शुरू नहीं करना चाहिए।

ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य समस्त विचारों और अनुमानों, एवं प्रतीक्षाओं और अपेक्षाओं का पूर्णतः बहिष्कार कर देना चाहिए।

आश्रम समाचार—

भटियाना में योग प्रचार समारोह

[प्रेषक—श्री राधाकृष्ण शर्मा (किशन शर्मा)]

[भटियाना जिला मेरठ में रावत क्षत्रियों का एक बड़ा गांव है। ठाकुर श्यामसिंह रावत बहुत बड़े जमीदार थे, उनका प्राचीन निवास स्थान एक महलके रूप में आज भी अवस्थित है। ठा. श्यामसिंहजी रावतकी धर्मपत्नी प्रेमवतीदेवी हैं जो कि श्री गुरुदेव जी की अनन्य भक्ता हैं। जमीदारी काल में ठाकुर साहब का रहन-सहन राजाओंके समान ही था उसी प्रकारकी कचहरियाँ हुआ करती थीं, यह अब अपनी कृषि कराते हुए स्वच्छ व पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आज से लगभग ४ वर्ष पूर्व श्री गुरुदेव जी ने भटियाना में योग-प्रचार कार्य-क्रम आरम्भ किया था। उसी प्रकार उसी समय से प्रति वर्ष यह कार्य-क्रम यहाँ हुआ करता है। हाल ही में यहाँ हुए योग-प्रचार के समाचार जिन्हें प्रेषक ने भेजा है, इस प्रकार हैं —सं० सम्पादक]

स्वागत-समारोह

श्री गुरुदेव जी ने ऋषिकेश वार्षिकोत्सव के पश्चात् ३ जुलाई तक आश्रम में ही निवास किया तत्पश्चात ४ जुलाई को भटियाना के लिये प्रस्थान किया।

श्री गुरुदेवजी कार-द्वारा ऋषिकेशसे हरिद्वार आये व हरिद्वार से मंसूरी एक्सप्रेस से मेरठ के लिये चले।

श्री गुरुदेव जी के सेवा हेतु ब्रह्मचारी केशवदेव व ब्रह्मचारी आनन्दस्वरूप जी साथ थे। श्री गुरुदेव जी ५ जुलाई को प्रातः ५ बजे हापुड़ पहुंचे। गाड़ी जैसे ही स्टेशन पर पहुंची कि भटियाना से स्वागतार्थ आये हुए भाई श्री ज्ञानप्रकाश रावत व राजेन्द्रप्रसाद रावत के साथ आई भीड़ ने गगनभेदी जय-जयकारों के बीच श्री गुरुदेव जी को मालाओं से ढक दिया। सब में प्रचुर उत्साह था। स्टेशन पर स्वागत कार्य-क्रम के बाद श्री गुरुदेवजी को कार द्वारा भटियाना लाया गया। कार को सुन्दर फूलों से सजाया हुआ था। भटियाना से कुछ दूरी पर एक रमणीक

बाग में श्री गुरुदेव जी के विश्राम स्नानादि का प्रबन्ध किया गया था। अतः कुछ घण्टे श्री गुरुदेव जी ने उस बाग में विश्राम किया। इतने में भटियाना का भक्त समाज और अधिक था उमड़ा, बैण्ड बाजों के साथ श्री गुरुदेव जी को भटियाना में प्रवेश कराया गया। श्री गुरुदेव जी जैसे ही गांव में पहुंचे नर-नारियों और बच्चों ने फलों की वर्षा की। उसके पश्चात् श्री गुरुदेव जी को ठा० श्यामसिंह जी के महल में ले जाया गया जहां पर उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था की गई थी।

कार्य-क्रमारम्भ

श्री गुरुदेव जी ५ ता० को भटियाना पहुंचे व उसी दिन रात्रि से कार्य क्रमानुसार कार्य-क्रम का प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम श्री गुरुदेव जी द्वारा श्री महाप्रभु जी की दिव्य आरती कीगई तत्पश्चात् प्रवचन आरंभ हुए। योग प्रचार कार्य यहां लगभग १ सप्ताह तक चला। श्री गुरुदेव जी ने अपने प्रवचनों में योग की महत्ताको सरल भाषा में समझाया जिसे स्त्री-पुरुष सभी ग्रामीण भक्त समाज ने ध्यानपूर्वक सुना व समझा। भटियाना का सत्संग एक अनोखा सत्संग रहता है। आरती के पश्चात् निर्माणाष्टक के सामूहिक गान में अनेक स्त्री-पुरुष, बच्चे, बालिकायें सैकड़ों की संख्या में ध्यानस्थ हो जाया करते हैं और कई-कई घण्टे तक इसी स्थिति में पड़े रहा करते हैं अनेक बालिकायें भावावेश में लीन रहा करती थीं। श्री गुरुदेव जी के भाषण के पश्चात् भी अनेक साधक ध्यानस्थ हो जाते रहे। उनका ध्यान नहीं खुलता था उसी स्थिति में उठाकर उनको उनके निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचा दिया जाता था। वे सुबह तक इसी स्थिति में लीन रहा करते थे।

संगीत कार्य-क्रम

श्री गुरुदेव जी के प्रिय शिष्य श्री इन्दु शर्मा भजनोपदेशक रमाला से आये हुये थे उनका संगीत कार्य-क्रम नियमपूर्वक चलता था। उन्होंने महाभारत के वीरों की कथायें बहुत ही रोचक, मधुर व वीरतापूर्ण सुनाईं जिन्हें सुनकर सभी ने मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा की। श्री प्रभु जी व गुरुदेव जी की महिमा के मनोहर भजन भी इन्होंने गाये जो सबको रुचिकर लगे।

महिला-सत्संग

भटियाना का महिला-सत्संग भी अपनी विशेषता रखता है। श्री बहिन प्रेमवती देवी की प्रधानता में बहिन शान्तीदेवी व कमला देवी, भगवतीदेवी आदि ने महिला-सत्संग का आयोजन किया, यह सत्संग एक सप्ताह तक नियमपूर्वक चलता रहा।

इस सत्संग में बहिनों के लोक-गीतों व संकीर्तन को सुनकर ग्रामीण जनता आत्म-विभोर हो जाया करती थी। इसमें विशेषता यह थी कि जिस समय भगवान कृष्ण की स्तुति में मधुर-मधुर भजन आरम्भ होते प्रायः सभी स्त्री-समाज ध्यानस्थ हो जाया करता था। आठ-आठ, दस-दस बालिकायें

भावावेश में अनेक प्रकार के श्रीकृष्ण-लीला के अभिनय किया करती थीं। कोई बंशी बजा रही है तो कोई गोवर्धन धारण किये हुये है कोई मक्खन खा रही है तो कोई सुदर्शन चक्र लिये हैं इस प्रकार का सारा वातावरण कृष्णमय ही घण्टों तक चला करता था जिसमें ही भावावेश में आत्म-विस्मृत होकर कृष्ण रूप में मग्न हो जाया करती थीं। ऐसा आत्म-विभोर बना देनेवाले वातावरण के निर्माण का श्रेय यहाँ के रावत परिवार को दिया जा सकता है। कोई भी यहाँ के सत्संग में शामिल होकर इस अनुपम दृश्य को देख सकता है।

विदाई कार्य-क्रम

कार्य-क्रम के पश्चात् श्री गुरुदेव जी को १२ जुलाई रविवार को प्रातः सवाई आश्रम के लिए प्रस्थान करना था। उससे एक दिन पूर्व ही सब के मन में वैराग्य-भाव जागृत हो चुके थे। सबके हृदय भीगे हुए थे। भटियाना गांवमें कच्चा होने के कारण भारी वर्षा के बाद अधिक कीचड़ थी फिर भी वर्षा और कीचड़ की परवाह न करके विदाई के हेतु भक्त-समाज चारों ओर से उस रथ को घेरे हुए था जिसमें गुरुजी विराजमान थे। सबकी आंखों से अश्रुधारा बह रही थी कोई नहीं चाहता था कि श्री गुरुदेव जी हम से बिछुड़ कर चले जांय। तन की सुध-बुध सब भूले हुए थे। इस दृश्य को देखकर अखिललोक-पावन भगवान् कृष्ण का वृन्दावन से विदाई का समय याद आ रहा था। उनके प्रगाढ़ प्रेम, श्रद्धा, भक्ति को देखकर व विदाई की इस बेला में महिलाओं की अश्रु-पूरित आंखों को देखकर नास्तिक के मन में भी प्रेम के अंकुर जागृत हो सकते थे। बड़ी ही कठिनाई के बाद श्री गुरुदेव जी के रथ को आगे बढ़ाया गया क्योंकि श्री गुरुदेव जी को आश्रम जाने के लिए हाफिजपुर स्टेशन से गाड़ी में सवार होना था। इस प्रकार भटियाना के निवासियों को वियोग-व्यथित छोड़कर श्री गुरुदेवजी ने हाफिजपुर स्टेशन से सवार होकर खुर्जा जंक्शन से दिल्ली, टूण्डला पैसेंजर द्वारा १२ जुलाई को चलकर रात्रि का लगभग दो बजे मितावली स्टेशन उतरे। स्टेशन पर आश्रम के साधक श्री गुरुदेव जी के सेवार्थ विद्यमान थे, जो उन्हें लेकर आश्रम आ पहुंचे।

* * *

''इस आत्मा को योग के बिना हम नहीं जान सकते। अर्थात् जिस प्रकार जादूगर का सत्य उसके इन्द्रजाल के नीचे ढका रहता है, और उस जादू विद्या को सीख कर ही वह सत्य पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार आत्मा का स्वरूप योग-माया के नीचे ढका होने के कारण वह योग-विद्या सीख कर ही जाना जा सकता है।''

—आचार्य विनोबा

ज्ञान-गोष्ठी—

जिज्ञासायें और समाधान

[प्रस्तुत अङ्क से 'सिद्धयोग' में हम 'ज्ञान-गोष्ठी' नामसे एक नया स्तम्भ आरम्भ कर रहे हैं। पाठकों और साधकों द्वारा प्रेषित की गई जिज्ञासायें तथा उन जिज्ञासाओं का श्री गुरुदेवजी द्वारा किया गया समाधान जो अतीव ज्ञानवर्धक और उपयोगी होगा हमारे इस स्तम्भ का विषय होगा। पाठकों और साधकों से अनुरोध है कि वे अपनी-अपनी जिज्ञासायें अथवा प्रश्न समाधान हेतु श्री गुरुदेव जी को या सम्पादक 'सिद्धयोग' के पते पर भेजते रहने की कृपा करें ताकि उनका समाधान शीघ्र प्रकाशित होता रहे।]

श्री गुरुदेव जी लिखते हैं—

हाल ही में आगरा से हमारे 'सिद्धयोग' के सह सम्पादक श्री पं० देवीप्रसाद जी शर्मा 'दिव्य' आये उन्होंने निम्नांकित दो प्रश्न किये जिनको मय उत्तर के नीचे दिया जा रहा है :—

प्रश्नः—महाराज जी गीता के छठे अध्याय में एक श्लोक आता है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

अर्थात् योगी का दर्जा तपस्वियों ज्ञानियों और कर्म-काण्डियों से भी उत्तम बताया गया है यहाँ पर 'योगी' शब्द से किस प्रकार के योगी का ग्रहण है और उसकी परिभाषा क्या है ?

उत्तरः—यहाँ पर इस श्लोक में योगी को सर्व श्रेष्ठ बतलाया है। यहाँ पर जगदात्मा का आशय युक्त योगी से है। भगवान् ने श्रीमद्-भगवद्गीता में योगियोंको 'युञ्जन योगी' एवं 'युक्त योगी' कह करके दो प्रकारके योगी कहे हैं। युञ्जन योगी वह कहलाते हैं जो अपने ध्यान योग का अभ्यास एवं उदिष्ट मार्ग के करते रहते हैं और युक्तता को

पाने के प्रयत्न में रहते हैं। इस प्रकार के योगियों को युञ्जान योगी कहा गया है। इसके अतिरिक्त जो लोग सब प्रकार से परिपूर्ण हैं व आप्त काम हैं उनको युक्त योगी कहा गया है। युक्त योगी का लक्षण भगवान् ने गीता में इस प्रकार कहा है :—

श्लोकः— ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थोविजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टश्मकाञ्चनः॥

श्लोक का अर्थ इस प्रकार है जिसका आत्मा ज्ञान व विज्ञान से परिपूर्ण है अर्थात् पूर्णरूपेण तृप्त है और जो विकार रहित स्थिति में पहुंच गया है जिसने अपनी इन्द्रियों पर पूरा-पूरा नियन्त्रण कर लिया है उसके बारे में स्पष्ट रूप से कह दिया है :—

उत्तर :—जिसकी दृष्टिमें लोहा, सोना, मिट्टी सब बराबर है ऐसे योगी को युक्त योगी कहते है। ऐसे श्रेष्ठ योगी का दर्जा सब प्रकार के कर्म-काण्डियों और ज्ञानियों से श्रेष्ठ है। ज्ञान शब्द 'ज्ञा' अवबोधनी धातु से बनता है इसका अर्थ होता है किसी वस्तु के स्वरूप का ज्ञाता तथ्य जानना और 'कर्म काण्ड' शब्द का अर्थ है विविध प्रकार के क्रिया-कलाप के द्वारा अपने यथार्थ स्वरूप की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहना। ऐसे व्यक्तियों को 'कर्म-काण्डी' कहा जाता है। जो लोग कर्मों के रहस्य को समझ कर कर्म-परायण बने रहते हैं उनका स्थान ज्ञानियों से नीचा है। और ज्ञानी लोग 'ज्ञा' अवबोधने से अवबोधन तक पहुंचते हैं इसका अर्थ होता है किसी वस्तु को जान लेना। इसलिये जान लेने मात्र से पूर्णता की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिये उनका दर्जा भी युक्त योगियों से नीचा ही रहता है। शुद्ध तत्त्वमें प्रवेश या पूर्णरूपेण स्वरूप स्थिति केवल मात्र युक्त योगियों को ही होती है भगवान ने गीता में इन तीनों भावों का संकेत करते हुए स्पष्ट रूप से कह दिया है :—

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मितत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

अर्थात् भक्तों की साधना करते हुए मनुष्य मुझे जान लेता है कि मैं कितना क्या और कैसे तत्त्व से हूं, इस प्रकार मुझे तत्त्व से जानकर

योगी मुझ में प्रवेश कर जाता है अर्थात् लीन हो जाता है इसी का नाम 'युक्तता' है। इसलिये 'तपस्विभ्योऽधिको योगी' को सर्व श्रेष्ठ बतलाने का भगवान् का युक्त योगी से ही अभिप्राय है।

प्रश्नः—युक्त योगी का सामर्थ्य क्या होता है ? और वह किस स्थिति में हर समय रहता है ?

उत्तरः—युक्त योगी सर्व सामर्थ्यवान होता है वह 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं' की सामर्थ्यवाला का हर समय होता है। बने को बिगाड़ दे बिगड़े को बना दे जैसा भी उसके मन में संकल्प आये वह सब कुछ हो सकता है। और वह सदा-सर्वदा अपनी स्वरूप स्थिति में रहा करता है।

—×○×—

आत्मा उत्तम आसन है

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदनी,
विधानतो नो फलको विनिर्मितम्।
यतो निरस्ताक्ष कषाय विद्विषः,
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥
न संस्तरो भद्र समाधिसाधनं,
न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥

अर्थात् ध्यान करने के लिये पाषाण की शिला, कुशा या पृथ्वी के आसन की आवश्यकता नहीं है। विद्वानों के लिए वह आत्मा ही स्वयं पवित्र आसन है, जिसने क्रोध आदि कषाय (कुवृत्ति) व इन्द्रिय विषय वासनारूपी शत्रु का संहार कर दिया है। हे मित्र ! आत्म-ध्यान के लिए न किसी स्थान, विशेष की, न लोकपूजा की और न सभा-सोसायटी की आवश्यकता है। जिस किसी प्रकार अपने हृदय से बाह्य वस्तुओं की वासना को निकाल कर, अपने ही स्वरूप में प्रति क्षण लवलीन रहे, वही ध्यान एवं समाधि है।

सचित्र योगासन व उनसे लाभ

बकासन

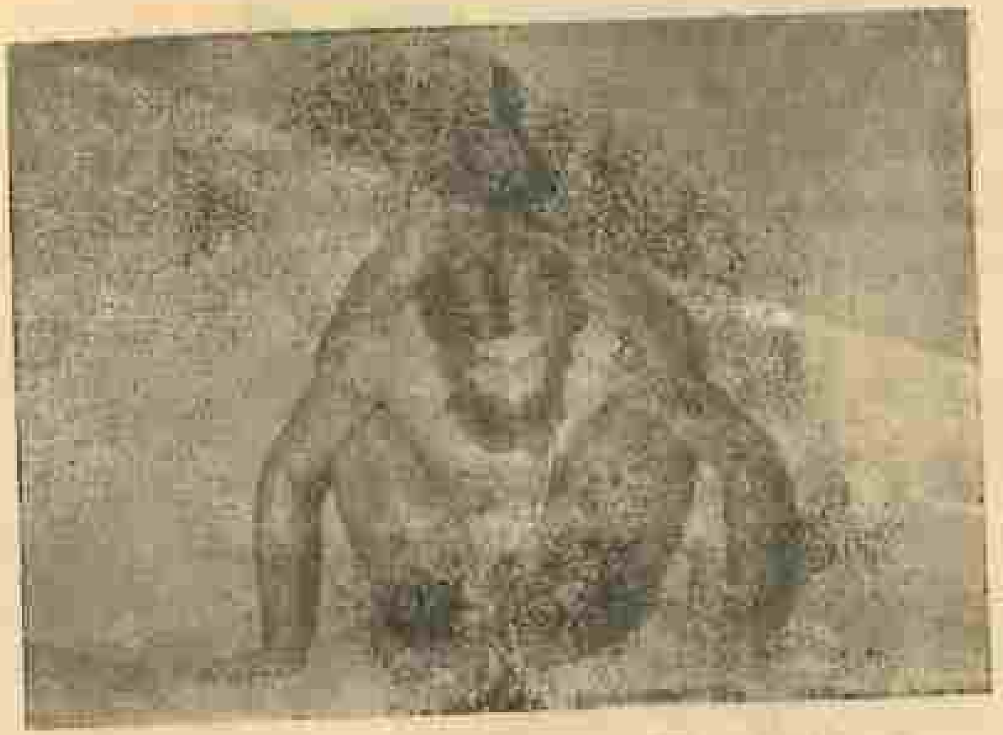

विधिः—इस आसन में सरल भाव से बैठ कर अपने हाथों के पंजे ज़मीन पर जमा लें व अपनी पैरों को उठाकर आगे की ओर पायतल किए हुए अपने कन्धों पर चढ़ा लें व हाथ के बल से सारे शरीर को ऊपर को उठा दें। शरीर के उठने पर फैलाव के साथ और आगे तो बढ़ जायेगा। इसी का नाम बकासन है। आसन क्लासों में यह आसन और भी कई प्रकार से कराया जाता है किन्तु अधिक लाभप्रद नहीं है।

लाभः—इसे करने से भुजदण्ड पुष्ट होते है छाती का विकास एवं उत्साह बढ़ता है। फेंफड़े शुद्ध होते है। जठराग्नि बढ़ती है व सब प्रकार आरोग्यप्रद है।

भद्रासन

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ ।
पदांगुष्ठे कराभ्यां च धृत्वा पृष्ठ देशतः ॥
जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्व व्याधिविनाशकम् ॥

विधि:—अपने पैरों की दोनों एड़ियों को अण्डकोषों के नीचे उलट कर रखे इसके बाद अपने हाथों को पीठ की तरफ से घुमाकर दोनों को उलट कर आये हुए अंगूठों को पकड़े (दायें पैर के अंगूठे को बायें हाथ से व बायें पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ से पकड़े) इसके पश्चात् जालन्धर बन्ध लगाकर (अपनी ठोड़ी को छाती में लगाकर) नासाग्रभाग को देखे इसी का नाम भद्रासन है ।

समय:—यह आसन कुछ कठिन है पहले अभ्यास करने वाले के लिये तो असम्भव सा ही है फिर भी अभ्यास से सभी कुछ सम्भव है । अत: इस आसन का अभ्यास करने वाले साधकों को यह पहले १० सैकिण्ड या शरीर के बलाबल को देखकर २० सैकिण्ड से आरम्भ करे उसके बाद पाँच-पाँच सैकिण्ड प्रतिदिन बढ़ाते हुए

एकान्त में सुख से आसन लगाकर बैठो । परात्पर परमात्मा में चित्त लगाओ । सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा का दर्शन करो । सब जगत् को परमात्मभाव से बाधित देखो । ज्ञान-बल से पूर्व कर्मों का क्षय करो । भावी कर्मों में आसक्त न होओ । शेष जीवन में प्रारब्ध का उपभोग करो और परब्रह्म में सदा स्थित रहो ।

—उपदेश पंचक से

घन्टों तक ले जा सकते हैं किन्तु व्यायाम दृष्टि वालों के लिये अधिक-से-अधिक दो मिनट प्रतिदिन का अभ्यास ही ठीक रहेगा।

फल:—यह आसन शरीर में दृढ़ता देता है सम्भव है, सभी प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला है। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करता है।

मत्स्येन्द्रासन

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम् ।
प्रगृह्य परिवर्तितांग श्रीमत्स्येन्द्रनाथोदितमासनं स्यात् ॥

विधि:—पद्मासन की विधि से अपनी बाईं जंघा पर दाहिने पैर को जमाये तदनन्तर उस बायें पैर को उठाकर अपने दाहिने पैर के घुटने के ऊपर से लेकर दाहिनी ओर जमा कर रख ले, उसके बाद अपने दाहिने हाथ को घुमाकर उस ही दाहिनी ओर जमाये हुए बायें पैर के घुटने को बांयी ओर लाकर दृढ़ता से उसी पैर के पंजे को पकड़ कर वहीं दृढ़ता से हाथ को जमाये रखें और सीधा बैठे इसी का नाम मत्स्येन्द्रासन है। इसी विधि से पैरों को बदल कर बांयें पैर को दाहिनी जंघा पर रख कर व दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने के पास से खड़ा पंजा लगाकर बांयी ओर जमा दे उसके बाद अपने बांयें हाथ को उस दाहिने जमे हुए पैर दाहिनी ओर से घुमा कर उस दाहिने ही पैर के पंजे को दृढ़ता से पकड़ कर हाथ वहीं जमाये रखें। इस प्रकार यह आसन दोनों ओर से बदल-बदल कर किया जा सकता है। इस आसन को करते हुए अपनी दृष्टि भ्रूमध्य रखनी चाहिये।

समय:—पहली बार ही अभ्यास करने वाले को भद्रासन की तरह उसे भी १० या २० सैकिण्डों से ही प्रारम्भ करना चाहिये बाद में पांच-पांच सैकिण्ड बढ़ाकर अभ्यासको ऊंचा बढ़ाया जासकता है।

लाभ:—इस आसन की विधि इस प्रकार की है कि जिसमें मेरुदण्ड स्वाभाविक ही सीधा रहता है मेरुदण्ड के सीधे रहने से सुषुम्ना

को गति स्वतः ही हो जाती है। अतः यह आसन मन की एकाग्रता का दाता है। कुण्डलिनी प्रबोध करने वाला है। पीठ में होने वाले व उदर में होने वाले सभी वात विकारों का नाशक है। जठराग्नि का वर्धक है। आंतों को पूरा-पूरा बल देता है। वीर्य-शुद्धि के लिये भी उत्तम है।

गोरक्षासन

जानवोरन्तरे पादावुत्तानाव्यक्त संस्थितौ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यां उत्तानाभ्यां प्रयत्नतः॥
कण्ठ संकोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत्।
गोरक्षासन मित्याहु योगिनां सिद्धि कारणम्॥

विधिः—प्रथम सीधे बैठ कर अपने दोनों पैरों के पादतल व एड़ियों को मिला लें व उसके बाद दोनों पैरों के पंजों को उलट कर सीवनी भाग में लिंग नाल के नीचे ले आकर छुपा लें। तदन्तर अपने हाथों को पीठ की ओर से लाकर व पटों के नीचे निकाल कर सामने दीखने वाली दोनों एड़ियों को पकड़ लें अर्थात् दाब लें। इसी का नाम गोरक्षासन है।

समयः—पूर्ववत् सेकड़ों से अभ्यास को बढ़ावें व अपने शरीर के बलाबल को देखकर सेकड़ों के हिसाब से ही आगे बढ़ावें।

लाभः—मन की एकाग्रता, इन्द्रिय जय, कुण्डलिनी जागरण व वीर्य-विकारों के लिये उत्तम है।

तुलसी के उपदेश

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुण्य दो बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥
राम नाम मणि दीप धरि, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु, जो चाहसि उजियार॥

पार्वती आसन

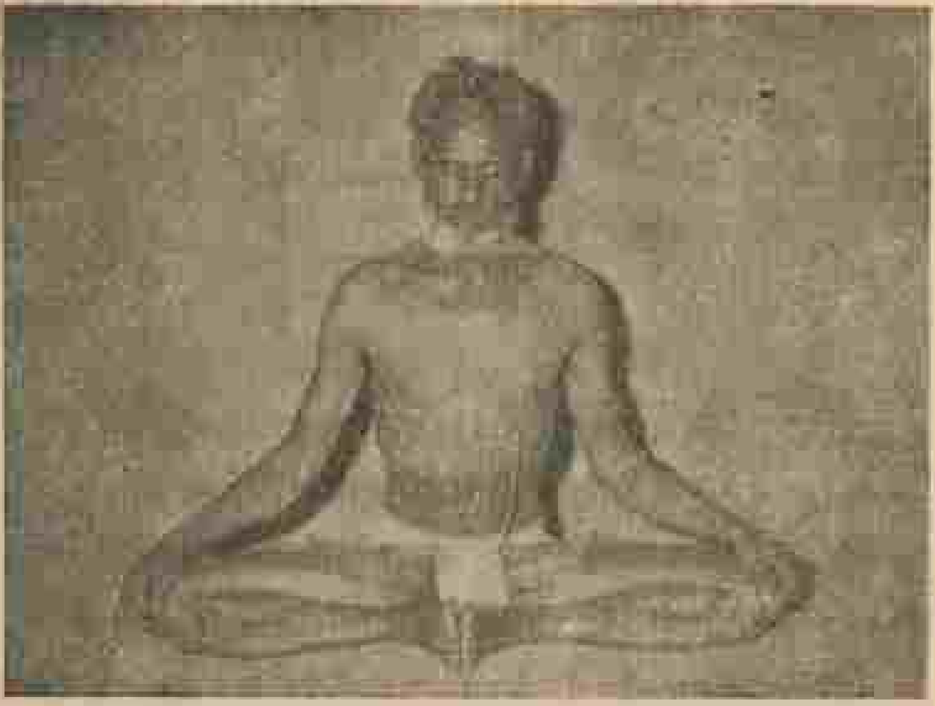

विधि:—सीधे बैठकर अपने दोनों पैरों को मोड़कर घुटनों के पास लाकर इस प्रकार मिलाओ कि दोनों पैरों के पादतल एड़ी पादतल व पैरों के पंजे इस प्रकार मिल जांय कि देखने वालों को यह मालूम हो कि जैसे परस्पर चिपकाये हुये हों उसके बाद दोनों एड़ियों को सीवनी में ले जाओ व पैरों के तलवे व पंजे मिले हुए बाहर को ओर सामने दिखलाई देते रहें। ऐसा करने से घुटने स्वतः ही फैल जावेंगे घुटनों पर अपने दोनों हाथ जमाकर रख दें। मेरुदण्ड सीधा रखें। इसी का नाम पार्वती आसन है।

समय:—साधारण रखें।

लाभ:—अवरोधक है वीर्य वाहिनी नाड़ी सिकुड़ती है, ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले सभी स्त्री-पुरुषों के लिये पूर्ण लाभप्रद है।

गोमुखासन

असव्ये पृष्ठपार्श्वे तु वाम गुल्फं नियोजयेत् ।
सव्ये सव्यं तथा गुल्फं गोमुखं गोमुखाकृति ।।
ऊर्ध्वतो दक्षिणं हस्तं पृष्ठ देश नयेत्तथा ।
अधस्तात्सव्य हस्तं तु तर्जन्या तर्जनींग्रियात् ।।

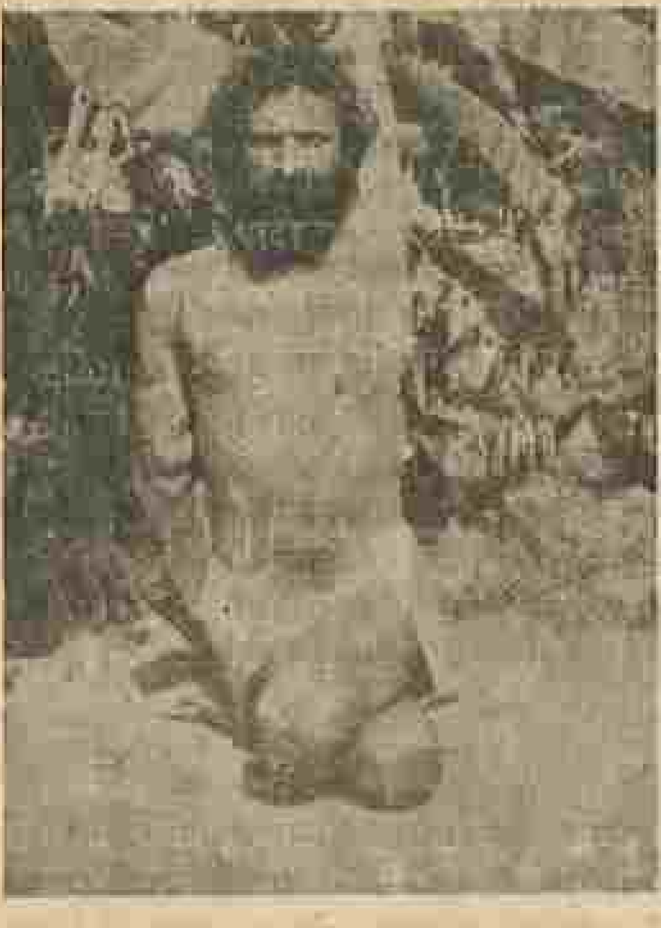

विधिः—दाहिने पृष्ठापार्श्व नितम्ब भाग (चूतड़) के नीचे बांये पैर की ऐड़ी को व बांयें नितम्ब के नीचे दाहिने पैर की गांठ अर्थात् टकने सहित ऐड़ी को जमा कर दाहिने हाथ के शिर की ओर से व बांयें हाथ को नीचे की ओर पीठ पर से ऊपर की तरफ बढ़ाकर दाहिनी तर्जनी अंगुली से बांयें हाथ से तर्जनी को दृढ़ता से पकड़ लें व दृढ़ भाव से बैठे रहें। इसी का नाम गोमुखाकृति का रूपक होने से गोमुखासन है।

समयः—शनैः शनैः अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए।

लाभः—मेरुदण्ड सीधा रहने से मन की एकाग्रता भी बढ़ाता है। स्नायु दौर्बल्य को दूर करता है।

"सत्यं-शिवं-सुन्दरम्"

[श्री वनवासी]

'हे वीर बालक ! तुम कौन हो ? अपना नाम वंश आदि तो बताओ, किस आचार्य्य से तुमने यह धनुर्विद्या सीखी है ? तुमने तो एक ही निशाने में हमारे साथ से भटक जाने वाले कुत्ते का मुंह केवल उसका भौंकना सुनकर बाणों से भर दिया है। यह शब्दवेधी बाण-विद्या तुमने किस से सीखी है ? आचार्य्य द्रोण ने पाण्डव कुमारों के साथ जाकर पूछा।

× × ×

आचार्य्य द्रोण को सामने देखकर काले-कलूटे निषाद बालक ने जो द्रोणाचार्य्य की ही मिट्टी की प्रतिमा सामने रखकर निरन्तर बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था, अपना धनुष-बाण एक ओर रख दिया। चरणों में झुका प्रणाम किया और बोला—'आचार्य्य मैं आपका ही शिष्य हूं। उस दिन आपने मुझे निषाद पुत्र होने के कारण धनुर्वेद की शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया था, पर मैं तो उसी दिन से आपको अपना आचार्य्य बना चुका हूं। वह देखो सामने आपकी मिट्टी की मूर्ति बनाकर मैंने गुरु-भाव से स्थापित कर रक्खी है और उसी दिन से आपको ही अपना हृदयाराध्य मानकर अविराम बाण चलाने का अभ्यास कर रहा हूं। आप ही की शक्ति है जिसके बल पर इतना अभ्यास कर पाया हूं।'

× × ×

आचार्य्य द्रोण बालक की बात सुनकर अवाक् रह गये। पास ही खड़े अर्जुन ने धीरे से आचार्य्य से कहा—'अब आप ही बतायें इस अति कुशल धनुर्धारी के रहते मैं 'अद्वितीय धनुर्धारी' कैसे बन सकता हूं ? क्या आपका मुझे दिया गया 'अद्वितीय धनुर्धारी' बनने का वरदान असत्य सिद्ध न होगा ?'

× × ×

द्रोणाचार्य्य कुछ देर स्तब्ध खड़े रहे फिर कुछ सोचकर बोले—बालक निषाद ! ठीक है, तुम मेरे शिष्य हो और मैं तुम्हारा आचार्य्य। लेकिन आचार्य्यत्व की कुछ गुरु-दक्षिणा भी तो मुझे दो।

निषाद बालक जिसका नाम एकलव्य था बोला 'जो आज्ञा हो प्रस्तुत करूं,' आचार्य्य ने बिना झिझक के कहा-'तो लाओ अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काट कर मुझे दक्षिणा में दे दो।'

× × ×

[पिछले पेज से आगे]

बिना कुछ हिचक और बिना रुके एकलव्य ने एक तेज धार वाले हथियार से अपना अंगूठा काटा और अपनी ही अंजलि में लेकर शोणित में सना हुआ वह अंगूठा गुरुदेव को समर्पित करते हुए हंसकर बोला—'लीजिए गुरुदेव गुरु-दक्षिणा'

× × ×

आचार्य्य ने वह अद्भुत गुरु-दक्षिणा ग्रहण की। धरती और आकाश सिहर गये। शिष्य के साहस की सराहना करते हुए आचार्य लौट चले। अर्जुन से बोले लो अब तुम अद्वितीय धनुर्धारी हो गये। बाण-विद्या में हस्तलाघवता लाने वाला अंगूठा निषाद पुत्र से मैंने युक्तिपूर्वक मांग लिया। अर्जुन सिर झुकाकर रह गया।

संसार भले ही कुछ कहे पर 'एकलव्य' की गुरु-दक्षिणा आचार्य्य और शिष्य के ऊंचे और पवित्र सम्बन्ध की शिष्य की गहरी श्रद्धा और भक्ति की परिचायक रहेगी।

×०×

मन को रोकने के कुछ साधन

भगवान श्री शंकराचार्य जी मन को रोकने का जो प्रयोग बताते है। इससे मन बहुत शीघ्र वश में हो जाता है। वे कहते है कि इस संसार के विषयों को तो महान् अरण्य समझो और मन को इस वन में रहने वाला भयंकर शेर समझो। मोक्ष की इच्छा वाला साधु इस भांति विषय-रूप वन में न जावे जैसे सिंह से सेवित वन में प्राणी नहीं जाते है और यदि गया तो नाश को अवश्य प्राप्त होगा।

"मोक्षमिच्छसि चेतात विषयान् विषवत्त्यजेत्" महर्षि अष्टावक्र जनक से कहते है कि—पुत्र! यदि तू मोक्ष को चाहता है तो विषयों को विषवत् त्याग दे। यही सिद्धान्त सांख्य दर्शन में भगवान् कपिलदेव ने कहा है कि—"ध्यानम् निरविषयं मनः" मन को विषयों से रहित बनाना ही ध्यान है। प्रयोग अनुभूत है चाहे कोई कर देखे।

नियम एवम् प्रतिज्ञा-पालन से भी मन का निरोध और आत्मबल की प्राप्ति होने में बड़ी सहायता मिलती है, जो पुरुष-प्रतिज्ञा एवम् नियम के कच्चे है, कमजोर होते है वे कभी किसी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते है। सफलता का न होना आत्मबल की कमी एवम् मन की शिथिलता का पक्का कारण है। मन के रोकने वाले पुरुषों को दृढ़प्रतिज्ञ, नियमपालक अवश्य होना चाहिए।

—×०×—

श्री सिद्ध गुफा सवाई में

गुरु पूर्णिमा समारोह

[निज सम्वाददाता द्वारा प्रेषित]

—×○×—

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी गुरु-पूर्णिमा समारोह विशेष रूप में धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। श्री गुरुदेव जी अपने कार्य क्रमानुसार १२ जुलाई को ही आश्रम आ गये थे। गुरु पूजन १ दिन का ही होता है किन्तु इस पर्व ने भी एक मेले का रूप धारण कर लिया है। यह समारोह भी तीन दिन का ही हो गया है। गुरु पूजन १८ जुलाई का था किन्तु गुरु भक्तों का १६ तारीख से ही आना प्रारम्भ हो गया था। १७ ता० को इतनी भीड़ हो गई थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि आज ही गुरु पूर्णिमा का दिन है।

पंजाब, हरियाना, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, कलकत्ता आदि व उत्तर प्रदेश के चारों ओर से साधक एकत्रित हुए थे।

श्री गुरुदेव के पूजनार्थ परम आदरणीय श्री जगनप्रसाद रावत पंचायत राज मन्त्री, उत्तर प्रदेश, श्री भाई दुर्गासिंह तोमर सहायक आबकारी आयुक्त, इन्दौर, दतिया से श्री शारदाशरण एडवोकेट, झाँसी से भाई श्री ईश्वरीप्रसाद बहुर, दुर्गापुर से भाई श्री रमेशचन्द्र दीक्षित, इलाहाबाद से भाई विनय मालवीय, कछवा से श्री स्वामीप्रसादसिंह चेयरमैन, मिर्जापुर से वैद्य लखनलाल जी, आगरा से श्री भाई आर. एन. महर्षि सुपरिन्टेन्डेन्ट इंजीनियर कैनाल व डा. ललितमोहन, ग्वालियर से श्री भाई बाबूसिंह कुशवाहा व श्री जयभगवान शर्मा मानमंदिर होटल, एटा से श्री राजकुमारसिंह व जेलर प्रेमसिंह, बदायूं से श्री उदयवीर सिंह रिटायर्ड कलक्टर, टूंडला से श्री एस. आर. सागर एम. आई. टी. आदि श्री गुरुदेव जी के पूजन के लिये आये थे। सब के ठहरने का समुचित प्रबन्ध था।

कार्य-क्रम का आरम्भ

गुरु पूर्णिमा दिनाङ्क १८ जुलाई को श्री अखिल लोक पावन योगयोगेश्वर महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का सुन्दर व भव्य सिंहासन सजाया गया था। उन भवभय-हारी की दिव्य मूर्तिकी आभा का अवलोकन करते-करते मन नहीं भरता था। हृदय यही चाहता था कि उनकी छटा को देखते ही रहें।

सर्व प्रथम श्री गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का श्री सिद्ध गुफा में दिव्य पूजन किया गया उसके बाद भव्य आरती की गई। इस दिन की आरती में एक अपूर्व आनन्द था। सबका हृदय प्रेम में थे। बड़ी ही धुन के

साथ मय बाजे व तबले के आरती की गई थी। इस आनन्द को वही जान सकता है जिसने श्री गुरुदेव जी की कृपा को पाया हो।

गुरु-पूजन

श्री सिद्ध-गुफा के बाहर अपने श्री गुरुदेव जी के लिये एक सुन्दर व भव्य मंच बनाया गया था। श्री प्रभु जी की आरती के पश्चात् श्री गुरुदेव जी उस मंच पर विराजमान हुए। सब भक्तों ने मिलकर एक साथ अपने गुरुदेव जी की आरती की पश्चात् गुरु पूजन का कार्य-क्रम आरम्भ हुआ। सब भक्तों ने सुविधा के लिये एक पंक्ति बनाई थी जो कि बहुत ही अच्छी थी। उस पंक्ति में लगे साधकों का जो पीछे थे ३-३ ४-४ घण्टे बाद पूजन का अवसर प्राप्त हुआ। पूजन का कार्यक्रम रात्रि तक चलता रहा जो भाई-बहिन आते गये पूजन करते रहे। कुछ समय के लिये पूजन कार्यक्रम बन्द करना पड़ा क्योंकि कुछ नये भाइयों ने दीक्षा लेनी थी। श्री गुरुदेव जी दीक्षा देने के लिये श्री सिद्ध गुफा में विराजमान हुए व घण्टों तक दीक्षा कार्य-क्रम चलता रहा।

इस प्रकार शाम को लगभग ६ बजे श्री गुरुदेव जी से भक्तों ने आग्रह किया कि महाराज जी आप भोजन कर लीजिये। अतः श्री गुरुदेव जी ने स्नानादि करके भोजन किया।

संगीत-संकीर्तन कार्य-क्रम

सर्व प्रथम हमारे आश्रम के पीताम्बरी ब्रह्मचारी ज्ञानीराम जी द्वारा संगीत कार्य-क्रम श्री गुरुदेव जी की आज्ञा पाकर गुरु भक्ति के रोचक व सुन्दर भजनों से आरम्भ हुआ। उसके बाद सहारनपुर की श्रीमती बहिन शान्तिप्रभा मित्तल का शास्त्रीय संगीत बहुत ही सुन्दर व सराहनीय रहा, कुमारी मीनाक्षी का तबला वादन भी सराहनीय था। बाला भवन से आये भाई चतरसेन जी द्वारा संगीत का कार्य-क्रम सुन्दर था। श्री प्रभु जी की सुन्दर-सुन्दर कथायें बनाकर सुनाईं जो अति रोचक थी भारत प्रख्यात श्री कृष्णकान्त झा का तबला वादन अद्वितीय व अपूर्व था जिसको सुनकर सभी मंत्र मुग्ध थे।

श्री ललितमोहन संकीर्तन मण्डल आगरा का कार्यक्रम अद्वितीय था जिसे सुनकर सारा श्रोता-मंडल झूम उठा। सब की यही लालसा रही कि इनका कीर्तन सुनते ही रहें इसमें विशेषता थी कि जो भजन गाये गये सब गुरु-भक्ति व गुरु महिमा के थे।

हमारे आश्रम के पुराने गुरु भक्त कवि श्री लक्ष्मीनारायण कौशल द्वारा गुरु पूर्णिमा पर एक भजन गाया जो इस प्रकार है :-

गुरु पूनो शान

तर्ज सावन का महिना ····· ।

गुरु पूनों को गुरु जी,
निश्चय करें निवास।
दर्शन करने दूर दूर से,
आते प्रभु के दास ॥टेक॥

खुशियों का दिन आज कितना है भारी।
युवा बाल बूढ़े जो नर और नारी ॥

पग पर सत हरपत है,
सब गुरु जी के पास ।।दर्शन।।
गुरु की शरण और
चरणों की रज से ।
तारण तारण पार
करते हैं भव से ।।
जन्म मरण से रहित
न रहता किसी किस्म का त्रास ।।दर्शन।।
आज दिन की देखो
महिमा निराली ।
चन्द्रा भी आय संग
लेकर उजाली ।।
सुरसति भी साज सजाकर,
झूम रहा है खास ।।दर्शन ।।
गुरु के पुजारी गुरु की
आरती उतारो ।
'सतगुरु की जय' प्रेम
पूर्वक पुकारो ।।
लक्ष्मी नारायन 'कौशल' की
पूरण हो गई आस ।।दर्शन।।

गुरु—वचनामृत

श्री गुरुदेव जी द्वारा गुरु-भक्तों के हितार्थ सारगर्भित उपदेश व प्रवचन हुआ। उन्होंने बताया कि गुरु-पूर्णिमा क्यों मनाई जाती है व गुरु-पूजा का क्या महत्व है व उससे क्या प्राप्त होता है। उन्होंने अजपा की महिमा बतलाते हुए कहा कि अजपा के द्वारा साधक परम लक्ष्य को प्राप्त हो सकता है। अजपा की बहुत बड़ी शक्ति है जिसे गुरुदेव की कृपा से व अनवरत अभ्यास से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार श्री गुरुदेव जी के उपदेश का सुनकर सब धन्य हुए।

भंडारा

गुरु-पूर्णिमा के दिन भंडारा था। सुन्दर प्रसाद तैयार किया गया था। दिन के १२ बजे प्रसादरूपी भोजन आरम्भ हो गया था। जो साधक पूजन करते जाते भोजन करते गये इस प्रकार रात्रि के १२ बजे तक भंडारा चलता रहा। सब प्रकार की समुचित व्यवस्था थी। सब ने प्रेमपूर्वक भंडारे का प्रसाद प्राप्त किया।

इस प्रकार गुरु-पूर्णिमा महोत्सव बड़ी ही धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस दिन का विशेष महत्व है। श्री गुरुदेव द्वारा शक्ति का संचार हर साधक पर बरसता है। हर शिष्य को समय निकाल कर गुरु-पूर्णिमा पर अवश्य ही गुरु-धाम आना चाहिए। गुरु-धाम का महत्व वही जान सकता है जो धाम में आकर गुरु-पूजा करते है। व अपने को धन्य बनाते हैं।

* * *

उत्तर-प्रदेश प्रशासन के पंचायत राज-विभाग द्वारा :—

सिद्धयोग को मान्यता

उत्तर प्रदेश के पंचायत राज प्रशासन द्वारा 'सिद्धयोग' समस्त पंचायतों की पाठशालाओं व पुस्तकालयों के लिए उपयोगी समझकर स्वीकृत किया गया है। निदेशक पंचायत राज ने अपने एक परिपत्र द्वारा समस्त जिला पंचायत राज अधिकारियों को परामर्श दिया है कि वे 'सिद्धयोग' को अपनी अधीनस्थ पाठशालाओं, वाचनालयों व पुस्तकालयों के लिए लेकर—लोक-जीवन के नैतिक स्तर, मनोबल को बढ़ाने में सहायक बनें।

प्रशासन द्वारा जारी किये गये परिपत्र की अविकल नकल इस प्रकार है :—

प्रेषक :— निदेशक पंचायत राज,
उत्तर-प्रदेश।

सेवा में,
समस्त जिला पंचायत राज अधिकारी,
उत्तर-प्रदेश

संख्या : २ । गा०, १०५ । ७०-२ । ६७ । ६९
लखनऊ, दिनांक जुलाई १, १९७०

विषय : **सिद्धयोग-पत्रिका**

महोदय,

उपर्युक्त विषय के प्रसंग में सूचित करना है कि श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सबाई, परमादपुर, जिला आगरा द्वारा प्रकाशित पत्रिका "**सिद्धयोग**" पंचायतों के लिए उपयोगी पत्रिका है। इसमें यौगिक क्रियाओं की सरल चर्चा होती है जो ग्रामीण जन-स्वास्थ्य एवं लोक-जीवन के नैतिक स्तर तथा उनके मनोबल को सबल बनाने में बड़ी सहायक हो सकती है।

आपसे अनुरोध है कि उक्त पत्रिका के विषय में गांव पंचायतों को भली प्रकार से सूचित कर दें और निर्देश दे दें कि जिन पंचायतों के पास अपने पुस्तकालय, वाचनालय व पाठशाला आदि हैं वे अवश्य ही अपनी-अपनी संस्थाओं में इस पत्रिका को सुविधानुसार मंगा कर अपनी क्षेत्रीय जनता को अवश्य लाभान्वित करें और उपयोगी यौगिक क्रियाओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करें।

पत्रिका का वार्षिक चन्दा १० रु० तथा एक अङ्क का मूल्य १ रु० और इसके मंगाने का पता यथा-उपर्युक्त (प्रस्तर-१) है।

भवदीय,

हस्ताक्षर (गिरधर गोपाल)
निदेशक, पंचायत राज, उत्तर-प्रदेश

सद्गुरु की सामर्थ्य

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ऐसे बहुत से लोग इस भवसागर में डूब गये जिन्होंने अविश्वास के कारण सद्गुरु का आधार छोड़ दिया। उन्हें सुख-दुख रूपी जलचरों ने बीच में ही खा डाला। इसलिए जिसे सद्गुरु की बातों पर पूरा विश्वास हो वही सद्शिष्य है और मोक्ष के अधिकारियों में अग्रगण्य है। जो सद्गुरु के वचनों से सन्तुष्ट होता है, वही सायुज्य मुक्ति का अधिकारी होता है और सांसारिक दुःखरूपी पंक या संकट में कभी नहीं फँसता। जो सद्गुरु या निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा देवता या सगुण ब्रह्म को बड़ा समझता है, वह सदा वैभव और शक्ति के धोखे में पड़ा रहता है और सच्चा वैभव या स्थायी सुख नहीं प्राप्त कर सकता। सद्गुरु तो सत् स्वरूप है और देवताओं का कल्पान्त में नाश हो जाता है ऐसी दशा में हरि और हर आदि देवताओं की सामर्थ्य कहाँ रह गई। इसीलिए सद्गुरु की सामर्थ्य अधिक है और उनके सामने ब्रह्मा आदि की कोई गिनती नहीं है। परन्तु अल्पबुद्धि मनुष्य की समझ में यह बात नहीं आती। सद्गुरु के चरणों की बराबरी और कोई नहीं कर सकता। उनके सामने देवता की सामर्थ्य कोई चीज नहीं है। देवता तो मायाजनित हैं।

जिस पर सद्गुरु की कृपा होती है उसके सामने देवताओं का भी वश नहीं चलता। वह अपने ज्ञानबल से वैभव को तृण के समान तुच्छ समझता है। जब सद्गुरु की कृपा का बल होता है तब उस अपरोक्ष ज्ञान से माया समेत सारा ब्रह्मांड भी तुच्छ जान पड़ता है।

—सन्त ज्ञानेश्वर

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज-आगरा-१